सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 55 ; अंक : 05
अगस्त 2022

प्रकाशन तिथि : 01.08.2022

मूल्य - एक प्रति : 22/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृतकण

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।

जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है वह संन्यासी तथा योगी है, और केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है।

◆ ◆ ◆

यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।

न ह्यसन्न्यस्त संकल्पो योगी भवति कश्चन।।

हे अर्जुन ! जिसको सन्यास ऐसा कहते हैं उसी को तू योग जान। क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष नहीं होता।

◆ ◆ ◆

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है। और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्व संकल्पों का अभाव है वही कल्याण में हेतु कहा जाता है।

◆ ◆ ◆

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।

सर्वसंकल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते।।

जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

◆ ◆ ◆

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

अपने द्वारा अपना संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 55 | अगस्त 2022 | अंक : 05

वाञ्छा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।

अर्थात्

साधु संगति में जिनकी इच्छा बनी रहती है। परगुणों में प्रीति बनी रहती है। गुरु चरणों में नम्रता बनी रहती है। विद्या अर्जन ही जिनका व्यसन है। अपनी धर्मपत्नी में ही जिनकी रति रहती है लोकापवाद से जिनको भय रहता है भगवान शंकर में भक्ति बनी हुई है आत्मनिग्रह में शक्ति बनी हुई है। जो दुर्जनों के संग से मुक्त रहते हैं। जिनमें ये गुण निवास करते हैं – उन मानवों को हमारा नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. **विशेष लेख**- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज 3
2. **सम्पादकीय** 7
3. **गीता एवम् योग**- श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री 9
4. **योग-आसन** 13
5. **कहाँ तक गाऊँ मैं बड़ाई गुरुदेव ही**- श्री जगदीश राए बंसल 14
6. **व्यक्तित्व का निर्माण कैसे**- श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह 19
7. **मन रूपी दर्पण**- श्रीमती सरिता भारद्वाज 24
8. **योगआसनों द्वारा पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ** - ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी 29
9. **योग की महिमा**- डॉ. ऋषिराम शर्मा 32
10. **प्रभु-भक्ति का वैदिक स्वरूप**- श्रीराम शर्मा आचार्य 38

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

हमारा विशेष लेख–

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इससे पहले अपने लेख में प्राणायाम की परिभाषा बतलाने का पूर्ण प्रयत्न किया है और प्राणायाम की परिभाषा समझाने के साथ–साथ उसके करने की क्या विधि है, यह भी समझाने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया गया है। प्राणायाम में लगाये जाने वाले तीनों बंधों का वर्णन भली प्रकार से कर दिया गया है। प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को चाहिए कि यदि वह प्राणायाम जैसी कठिन क्रिया को प्रारम्भ करते हैं तो अपनी योग्यता की जांच भली प्रकार से कर लें। शिव–संहिता में भगवान शिव ने योगोपासक साधकों के विविध प्रकार के साधन लिखे हैं, उनमें कौन साधक किस योग का अधिकारी है भिन्न–भिन्न प्रकार से समझाया है। उनमें से सर्व साधारण के हित के लिए सभी प्रकार के साधकों के लक्षण हम यहाँ लिख देना उचित समझते हैं। अधिकारी के विभागानुसार ही साधक अपनी उन्नति एवं विकास कर सकता है। जो साधक जिस विषय का अधिकारी नहीं है, यदि वह उस विषय की ओर अपना कदम बढ़ाता है तो वह उसकी अनधिकार चेष्टाँ। परिणाम में कभी भी इष्ट सफलता को नहीं पा सकता। अतः साधक को चाहिए कि शास्त्रोक्त अधिकारानुसार ही स्वायत्त चेष्टावान होकर ही अपने आप को उन्नति के पथ पर बढ़ाये।

तीन प्रकार के योगाधिकारी

जिनमें से प्रथम मृदु साधक के लक्षण निम्नांकित पंक्तियों में लिखे जा रहे हैं –

मन्दोत्साही सुसंमूढ़ो, व्याधिस्थो गुरुदूषकः।
लोभी पापमतिश्चैव, वह्वाशी वनिताश्रयः।।
चपलः कातरो रोगी, पराधीनोऽति निष्ठुरः।
मंदाचारो मंदवीर्यो, ज्ञातव्यो मृदुमानवः।।
द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धिरेतस्य यत्नतः परम्।
मन्त्र योगाधिकारी स, ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम्।।

अर्थात् मंदोत्साही तमसावृत्त मूढ़चित्त वाला, आधिव्याधियों से ग्रसित, गुरु निन्दक,लोभी, जिसके मन बुद्धि में हर समय पापवासनायें रहती हों, बहुत अधिक भोजन करने वाला, स्त्री का वशानुवर्ती, कठोर बोलने वाला, मंद कर्मों वाला, मंद वीर्य वाला, इस प्रकार का जो साधक है वह मंदाधिकारी है। ऐसा साधक जो मंत्र योग का अधिकारी हो जिसमें ये लक्षण मिलते हों, उसको चाहिए कि वह साधक स्वाध्याय–परायण हो जाय। स्वाध्यायशील होकर ही समाधि प्राप्त करने का प्रयत्न करे। स्वाध्याय से ही उसको सफलता मिल सकती है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति स्वाध्याय परायण होकर अवश्य ही समाधि को पा सकता है। क्योंकि इस विषय में शास्त्र की आज्ञा है कि:–

स्वाध्यायाद्योगमासीत, योगास्त्स्वाध्याय मामनेत्।

स्वाध्याय योग संपत्त्या, परमात्मा प्रकाशते।।

ऐसे साधक को मंत्र योग प्राप्त करके उसके जप में लग जाना चाहिए। जब जप करता–करता थक जाए तब ध्यानाभ्यास में लग जाय। इस प्रकार जप और ध्यान परायण हुआ व्यक्ति समाधि के द्वार तक पहुँच जाया करता है। ऐसा साधक मंद योग का ही अधिकारी हो सकता है।

हठ योग का अधिकारी

स्थिर बुद्धिर्लये युक्तः, स्वाधीनो वीर्यवानपि।
महाशयो दयायुक्तः, क्षमावान् सत्यवानपि।।
शूरो वयस्थः श्रद्धावान्, गुरुपादाब्जपूजकः।
योगाभ्यासरतश्चैव, ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः।।
एतस्य सिद्धिः षड्वर्षे भवेदभ्यास योगतः।
एतस्मै दीयतो धीरो, हठ योगश्च सांगतः।।

अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला, जिसके निश्चय बार–बार बदलते न रहते हों, लय योग के साधनों में सामर्थ्य रखता हो, सब प्रकार से स्वतन्त्र हो, किसी भी प्रकार की किसी की आधीनता न हो, वीर्यवान् हो, और जिसके विचार ऊँचे हों, प्राणी मात्र पर दया की भावना मन में जगती हो, क्षमाशील हो, समाधि योग में प्रवृत्ति हो, सत्य जिसके मन में वास करता हो, श्री गुरुदेव के चरणारविन्द का पुजारी हो, शूर हो, योगाभ्यास में पूरी–पूरी लगन हो, इस साधक को अधिमात्र साधक कहते हैं। ऐसा साधक हठ योग का अधिकारी है। हठाभ्यासरत यह साधक जल्दी से जल्दी उन्नति को प्राप्त कर सकता है, इसके अतिरिक्त आगे जो लक्षण बतलाये जा रहे हैं। वह उत्तम अधिकारी के लक्षण हैं।

सब प्रकार से पूर्ण योगाधिकारी

महावीर्यान्वितोत्साही, मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शीलश्च, निर्मोहश्च निराकुलः।।
नवयौवन संपन्नो मितहारी, जितेन्द्रियः।
निर्भयश्च शुचिर्दक्षो, दाता सर्वजनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरो धीमान्, यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च, गुप्तचेष्टः प्रियं वदः।।
शास्त्र विश्वास सम्पन्नो, देवता गुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च, महाव्याधि विवर्जितः।।

अधिमात्र तरो ज्ञेयः, सर्व योगस्य साधकः।
त्रिमिस्संवत्सरै सिद्धि, रेतस्य नाम संशयः।।
सर्व योगाधिकारी स, नाम कार्य विचारणां।।

अर्थात् महावीर्यवान्, उत्साहयुक्त, स्वरूपवान्, सूरता सम्पन्न, शास्त्रज्ञ, अभ्यासशील, मोह से रहित, आकुलता रहित अर्थात् सावधान, नव यौवन सम्पन्न, मिताहारी, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, निर्भय, पवित्र आचार वाला, चतुर, दानशील, शरणागत पालक, स्थिर चित्त बुद्धिमान, सन्तोषयुक्त क्षमावान, शीलवान, धार्मिक कर्मों को गोप्य रखने वाला, प्रिय सत्यवादी शास्त्र में विश्वास देवता और गुरुपूजक, जन संग रहित, महाव्याधि रहित, ऐसे गुण जिसमें हों वह सर्वयोग का साधक है। ऐसे साधक को तीन वर्ष में ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसमें बिलकुल भी संशय नहीं है। यह साधक सर्व योग का अधिकारी है ऐसे साधक को श्री गुरुदेव जी समस्त योग का उपदेश कर देते हैं। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं रहनी है।

इस प्रकार से योग के विभिन्न अधिकारी साधकों का वर्णन शिव संहिता में भगवान शिव ने किया। योग–दर्शन में भी अधिकार भेद भली प्रकार समझाया गया है। भगवान पतंजलि देव ने इस प्रकार के अधिकारियों को समझाने के लिए तीन सूत्रों का उल्लेख किया उनके विशेष व्याख्यान की इस लेख में आवश्यकता नहीं है; किन्तु फिर भी संकेत मात्र में मैं यहाँ लिख देना उचित समझता हूँ।

श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धा वीर्य के द्वारा स्मृति समाधि को पैदा करके प्रज्ञा पूर्वक आगे बढ़ता है उसका रास्ता अन्तराय रहित हो जाता है ऐसे व्यक्ति के भी तीन–तीन भेद हो जाते हैं। मृदु संवेग, मध्य संवेग, तीव्र संवेग। जिनके लिए भगवान् पतंजलि देव ने–

तीव्र संवेगानासन्नः– कह करके तीव्र अधिकारियों के लिए जल्दी समाधि लाभ का फल लिखा है। हमारे पहले लेखों में प्राणायाम की परिभाषा और उसकी विधि का भली प्रकार वर्णन किया जा चुका है। किन्तु यह सब कुछ होने पर भी मनुष्य को अधिकार–भेद समझकर पग बढ़ाना बहुत ही आवश्यक है। कम से कम हठयोग का अधिकारी ही प्राणायाम में प्रवृत्त हो सकता है। यदि साधक अधिक मात्र तम योग का अधिकारी हो तो सर्वोत्कृष्ट है ही अन्यथा इस लेख में ऊपर हठयोग के अधिकारी के लक्षण बतलाये गये हैं उतना तो आवश्यक है ही। अतः प्राणायाम के साधक को अपने अधिकार को शास्त्रोक्त निश्चय करके उसमें प्रवृत्त होना चाहिए। अन्यथा मंत्र योग, राजयोग आदि का अभ्यास करना चाहिए जिससे पतन न हो।

सम्पादकीय-

ध्यान का वैज्ञानिक स्वरूप

आचार्य (डा०) रामलाल शर्मा

योग की मुख्य प्रक्रिया ध्यान है। मैंने पिछले लेख में बताया था कि साधक को कहाँ व कैसे ध्यान करना चाहिए।

ध्यान अपने शरीर के अन्दर ही चेतना के केन्द्रों में किया जाता है। मूलाधार स्वाधिष्ठान व अनाहत आज्ञा आदि चक्र में ध्यान आँखें बंद करके ही किया जाता है। क्योंकि खुली आँख रहने पर हमारी वृत्ति बाहर जाती है, ध्यान बाहर चला जाता है। सगुण ध्यान और निर्गुण ध्यान की बात की गयी है। सगुण ध्यान ही श्रेयस्कर है और साधक के लिए फलदायी है, यह निर्णय किया गया है।

निर्गुण का ध्यान कठिन है इसके लिए हम ॐ का ध्यान कर सकते हैं। पतंजलि जी ने ॐ या प्रणव का जाप बताया है और साथ ही 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' के अनुसार मन्त्र के अर्थ की ही भावना या चिंतन करने की बात कही गयी है। मनुष्य जब से पैदा हुआ है संसार का ज्ञान उसे दो तरह से होता है या तो वह किसी वस्तु को नाम से जानता है या रूप से जिसे वह व्यवहार में देखा करता है। नाम और रूप से भिन्न किसी और वस्तु को मनुष्य जानता नहीं है और वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

आत्मा नाम और रूप से भिन्न हैं अतीत क्योंकि वह अव्यक्त है इसलिए उसका चिन्तन बनता नहीं है। सगुण उपासना में हम किसी रूप का ध्यान करते हैं। इष्ट के नाम का जाप करते हैं तथा उनके रूप का ध्यान करते हैं। ध्यान करते हुए हमारे प्राण और मन उस में विलीन होने लगते हैं। छोटी शक्ति बड़ी शक्ति में विलीन होती है यह नियम है। साधक का मन और बुद्धि इष्ट के स्वरूप व चित्त में लीन होने लगता है। गीता में भगवान ने भक्ति योग के बारहवें अध्याय में अर्जुन को मन और बुद्धि को अपने निवेश करने का आदेश दिया है इससे भक्त भगवान में ही वास करता है। जितने भी भक्तात्मा हुए हैं उन्होंने इसी प्रकार से इष्ट की शक्ति को पाया है। योग दर्शन में ईश्वर प्रणिधान से समाधि प्राप्ति का वर्णन है ईश्वर प्रणिधान के प्रकरण में व्यास देव जी लिखते हैं ईश्वर प्राणिधान से भक्ति विशेष से अपनी श्रद्धा व प्रेम से सम्मुख किया हुआ ईश्वर साधक पर कृपा करता है। वे अपने संकल्प के समाधि की अभिलाषा को पूर्ण कर देते हैं।

ध्यान योग की प्रक्रिया पूर्ण वैज्ञानिक है। इष्ट के स्वरू. में अपने को पूर्ण लय कर देने पर ही साधक को अभीष्ट लाभ पहुँचता है। इसको हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। हम यदि किसी वस्त्र को रंगते हैं तो उसमें सूखे रंग डालने से काम नहीं बनेगा। होली में हम एक दूसरे के ऊपर आपस में सूखा रंग डालते हैं जो सहज ही झाड़ने मात्र से छूट जाता है। किसी यदि रंग को

पानी में घोल कर नमक आदि मिलाकर किसी के ऊपर डालते हैं या फेंकते हैं वह बहुत कठिनाई से उतरता है। इसी प्रकार से पूजा–पाठ, उपवास तीर्थ आदि का रंग हमारे चित्त पर स्थाई रूप से चढ़ नहीं पाता। वस्त्र को रंग में पूरा डुबोने पर ही रंग चढ़ पाता है। यही बात समाधि के विषय में है जब तक पूर्णतया मन बुद्धि को इष्ट में लय नहीं करते है तब तक लाभ नहीं मिल पाता है। मीरा बाई ने अपने को पूर्णतया भगवान में लीन कर दिया था। इसी से उनके जीवन में आलौकिक शक्तियों का वास था। इसी के बल पर मीरा ने विष को अमृत में बदल दिया था। यह मीरा की संकल्प शक्ति का परिणाम था।

ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में एक योगी श्री कृपालानन्द रहते थे व भगवान शिव में लीन रहा करते थे। इस कारण से उन में भी शिव की शक्तियाँ सहज ही वास करती थीं और वह अलौकिक शक्तियों से शिव कृपा से सम्पन्न थे। अपने संकल्प से ही अपनी अंग्रेज शिष्या को बहुत भारी शिला के ऊपर बिठाकर योगी हीरागिरी के कुटिया के सामने आकाशमार्ग से लाकर रखवा दिया था। इस प्रकार के दृष्टांतों से स्पष्ट होता है कि ध्यानयोग से योगी में अपने इष्ट की सिद्धियाँ स्वतः आ जाती हैं। यह घटना सगुण ध्यान का सुन्दर उदाहरण है। अस्तु।

निर्गुण के ध्यान में साधक ब्रह्म का ध्यान करता है। नाम तथा रूप से अतीत ब्रह्म के ध्यान में साधक का मन एकाग्र नहीं हो पाता है। प्रकाश का चिंतन लम्बे समय तक कठिनाई से ही हो पाता है। सगुण उपासक स्वतः ही कालान्तर में निर्गुण में प्रवेश पा जाता है, गुणातीत हो जाता है। साधक का अज्ञान नष्ट हो जाता है। गीता के दसवें अध्याय में भगवान कहते हैं कि जो मुझ में अनन्य भाव से प्राण और चित्त लगाये रखता है, मेरी लीला व चरित्रों का भक्तों में गुणानुवाद करता है तथा निरन्तर मेरा चिन्तन करता है उसे मैं बुद्धि योग देता हूँ जिसके बल से भक्त मुझे पा जाता है। उस भक्त का पूर्ण कृपा करते हुए योग रूपी दीपक से उनके घट में व्याप्त अन्धकार को नष्ट कर देता हूँ।

इस प्रकार से अपने सगुण भक्ति और ध्यान का अनुपम फल भगवान ने बताया है। निर्गुण ब्रह्म में वह आकर्षण नहीं होता है जिससे भक्त उनकी तरफ बलपूर्वक खिचा चला जाए। सगुण उपासना में दोनों ओर से परमाणुओं का आदान–प्रदान होता है। धीरे–धीरे साधक के निर्बल परमाणु इष्ट के दिव्य परमाणुओं में लय होते चले जाते हैं इससे साधक में दिव्यता आ जाती है और साधक के अंतःकरण में विद्यमान अज्ञान मिट जाता है।

सगुण और निर्गुण के ध्यान की बात समझने के लिए एक उदाहरण का सहयोग ले सकते हैं। एक विद्यार्थी जब हिन्दी पढ़ना शुरू करता है तो उसे अ से अनार का बोध कराते हैं बच्चा अनार के चित्र को देखकर अ का बोध प्राप्त करता है जबकि अ से अंगूर, अंजीर, अमरूद आदि असंख्य शब्द बनते हैं। ऐसे ही सगुण के ध्यान में परिपक्व होकर धीरे–धीरे कालान्तर में निर्गुण में प्रवेश पा जाते हैं। योग ध्यान में भी सर्वप्रथम वितर्क अनुगत समाधि का अभ्यास किया जाता है। इसमें पंच तत्त्व के स्थूल रूप का ध्यान आँखों को बन्द करके किया जाता है। कुछ महीनों के अभ्यास के बाद पंच महाभूतों के सूक्ष्म रूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्रा का

अनुभव करता है। इस प्रकार से सम्प्रज्ञात समाधि में पूर्णता प्राप्त करता है जिसे प्राप्त करना योगी का लक्ष्य है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि सगुण ध्यान से ही निर्गुण में प्रवेश मिलता है। सीधे निर्बीज में जाने का क्रम नहीं है।

इस प्रकार से ध्यान योग जैसे कठिन विषय को शास्त्र प्रमाण द्वारा तथा जैसे गुरुदेव के मुख से श्रवण किया है। उसे पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है। अतः साधक को अपने जीवन में प्रतिदिन ध्यान का नियमित अभ्यास करना चाहिए यही कल्याण का मूल साधन है।

श्री गुरु पूर्णिमा धूम धाम से मनाया गया—

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी श्री गुरु पूर्णिमा का महोत्सव 13 जुलाई को श्री सिद्ध गुफा सवाँई धाम में धूमधाम से मनाया गया। बहुत दूर-दूर से साधकों ने आकर श्री गुरु कृपा का आनन्द लिया। इसके साथ ही 15 जुलाई से श्री रुद्र महायज्ञ का शुभारम्भ 11 वेद पाठियों के द्वारा किया गया। 21 जुलाई को इसकी पूर्णाहुति हुई। कम से कम ढाई सौ साधकों ने सम्मिलित होकर मन्त्र जाप एवं ध्यान का पूर्ण लाभ लिया। यज्ञ शाला में सैंकड़ों व्यक्ति ध्यान अवस्था में बैठे देखे जा सकते थे। साधकों ने इस अभ्यास क्रम को अनवरत रखा। 21 जुलाई को पूर्णाहुति हुई। तत्पश्चात् दूसरे दिन साधक अपने घरों को वापस जाने लगे। सभी ने पूर्ण आनन्द लिया।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गीता एवम् योग

श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री

योग के अन्तर्विभाग

पूर्वोक्त प्रकरणों में इस बात का संकेत किया गया है कि जीवात्मा ईश्वर का सनातन अंश होने के कारण नित्य, शुद्ध, बुद्ध तथा मुक्त है किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण वह बन्धन में है। योग की अमर निधि को पाकर वह इन बन्धनों से मुक्त होकर ईश्वर को प्राप्त हो सकता है। यह समझाना ही गीता का उद्देश्य है। गीता में योग के तीन अर्न्तविभाग किये गये हैं– ज्ञानयोग, कर्मयोग, तथा भक्ति योग।

(1). ज्ञानयोग–

दृश्यमात्र सम्पूर्ण जगत माया का कार्य होने से क्षणभंगुर, नाशवान, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य चेतन, निर्विकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ईश्वर का ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर परम पुरुष परमात्मा में एकीभाव से नित्य स्थित रहने का नाम ही ज्ञानयोग है। श्रद्धालु और साधनपरायण व्यक्ति ही ज्ञान का अधिकारी है। यथा–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां, शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

श्रद्धालु, संयमी तथा तत्तरतापूर्वक साधन में लगे रहने वाला योग साधक ही ज्ञान को प्राप्त होता है और ज्ञान पाकर वह शीघ्र ही परमात्मा की प्राप्ति–रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। इसलिए–

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।

इसलिए तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों की शरण में जाकर उनसे उसे जान। तुम्हारे दण्डवत् प्रणाम करने से, भक्तिपूर्वक सेवा करने से तथा विनीतभव से जिज्ञासा प्रकट करने पर वे तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन तुम्हें ज्ञान का उपदेश दे देंगे।

गीता के तेरहवें अध्याय में श्लोक संख्या 7 से 11तक ज्ञान का यथार्थस्वरूप सविस्तार वर्णित किया गया है। यथा

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी भी प्रकार न सताना, मन, वाणी की सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहरी तथा भीतरी शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर का पूरा नियन्त्रण, इस लोक तथा परलोक के सम्पूर्ण भोगपदार्थों में आसक्ति का न होना, अहंकार का न होना जन्म–मृत्यु–बुढ़ापा और रोगादि दुःखों का बार–बार चिन्तन करना, स्त्री–पुत्र घर और धनादि में ममता न रखना,

प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में न तो प्रसन्न होना और न दुःखी होना, केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर को ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके श्रद्धा–भक्ति सहित उस परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करना, एकान्त और पवित्र स्थान में रहने का स्वभाव, विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना तथा अध्यात्म ज्ञान में नित्य–स्थिति और परमात्मा को सर्वत्र अनुभव करना यह सब ज्ञान है। इसी ज्ञान की प्राप्ति हेतु कर्मयोग, भक्ति योग तथा अष्टाङ्गयोग का निर्देशन किया गया है।

(2). कर्मयोग–

फल और आसक्ति को त्यागकर अपने वर्ण आश्रम के अनुसार सभी प्रकार के कर्त्तव्य कर्मों को भगवत् प्रीत्यर्थ करना कर्मयोग कहलाता है। जो व्यक्ति जीवनभर पुण्यमय तथा लोकहित के कार्यों को करते रहते हैं किन्तु वे न तो फल की इच्छा रखते हैं और न अपने को उन कर्मों का कर्त्ता समझते हैं वे व्यक्ति कर्मयोगी कहलाते हैं। इस प्रकार अनासक्त भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है और राजर्षि जनक की भाँति परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। फलेच्छा को त्यागकर कर्म रहना योगारूढ़ होने का उत्तम साधन है। छठे अध्याय के तीसरे श्लोक में यह बात स्पष्ट की गई है–

आरुरूक्षो मुनेर्योगं, कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढ़स्य तस्यैव, शमः कारणमुच्यते।।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा रखने वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्कामभाव से कर्म करना ही हेतु कहा है। अर्थात् कर्म करने से ही वह योगारूढ़ हो सकता है। और योगरूढ़ हो जाने पर सर्व–संकल्पों का अभाव ही उसके कल्याण का हेतु बन जाता है अर्थात् उसके कर्म स्वयं ही छूट जाते हैं। इसलिए भगवान का आदेश है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं, व्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा, समत्वं यो उच्यते।।

हे अर्जुन ! आसक्ति को त्यागकर तथा सफलता और असफलता में समान बुद्धि रखकर योग में स्थित हुआ तू कर्म करता जा। क्योंकि समत्वभाव ही योग कहलाता है–

कर्मणयेवाधिकारस्ते मा, फले तु कदाचन।
प्रा कर्मफलहेतुर्भूर्मा, ते संगोस्त्वकर्माणि।।

कर्म करने मात्र में तेरा अधिकार है फल प्राप्ति में नहीं। इसलिए फल की इच्छा मत रख और कर्म करना भी मत छोड़–

सक्ताः कर्मणयविद्वांसो, यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वस्तिथासक्त- श्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।

हे अर्जुन ! अज्ञानीजन फलेच्छा को रखते हुए ममता एवं आसक्तिपूर्वक जिस प्रकार कर्मों को करते हैं। विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह भी लोक शिक्षा एवं लोकहित के लिए आसक्ति को त्यागकर उसी प्रकार कर्म करता रहे–

कायेन मनसा बुद्धया, केवलैरिन्द्रियैरपि।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति, संगं व्यक्तवात्मसुद्धये।।

कर्मयोगी किसी प्रकार की ममता एवं आसक्ति न रखते हुए भी अपने शरीर, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों से अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।

उपरोक्त प्रकार से कर्म करने वाला योगी कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाता है और वह भगवत्प्रातिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

यही कर्मयोग का स्वरूप है। इस योग को समत्वयोग, निष्काम कर्मयोग, अनासक्तियोग आदि नामों से भी वर्णित किया गया है।

(3) भक्तियोग-

जिस साधना में भक्ति की प्रधानता हो उसे भक्तियोग कहा जाता है। भक्तियोग का वास्तविक स्वरूप गीता के बारहवें अध्याय के निम्नलिखित श्लोकों में समझाया गया है-

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव, अतऊर्ध्वं न संशयः।।

अथ चित्तं समाधातु न, शक्नोषि मयि स्थिरम्।

अभ्यासयोगेन ततो, मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।

इन श्लोकों में परमयोगी श्रीकृष्ण ने भक्तियोग के द्वारा ईश्वरप्राप्ति के चार सरल उपाय बतलाये हैं और उनमें साधक को सर्वप्रथम वह आदेश दिया है कि वह अपना मन और बुद्धि ईश्वर में विलीन कर दे। ऐसा करने के उपरान्त वह ईश्वर में ही निवास करेगा। इसमें सन्देश नहीं है। मन और बुद्धि ईश्वर में लगाने का अर्थ है कि साधक स्वयं को सर्वतोभावेन ईश्वर के अर्पण कर दे। अपना पृथक अस्तित्व ही अनुभव न करे।

यदि साधक ऐसा न कर सके तो उसके लिए दूसरा उपाय बताया है -

यदि तू मन को मेरे मे लगाने में समर्थ नहीं है तो ध्यानाभ्यास, स्वास्थ्य, सत्संग एवं संकीर्तन आदि साधनों द्वारा मुझे परमेश्वर को प्राप्त करने की इच्छा कर।

यदि तू पूर्वोक्त प्रकार से योगाभ्यास करने में भी अपने को असमर्थ समझता है तो स्वार्थ को त्यागकर तथा मुझ परमेश्वर को ही परम आश्रय, परमगति समझकर निष्काम प्रेम भाव से मनसा, वाचा, कर्मणा मेरे निमित्त ही यज्ञ, दान, तपादि कर्मों को कर।

यदि मनुष्य यह भी न कर सके तो उसके लिए भगवान ने चौथा उपाय बतलाया है कि वह समस्त कर्मों का फल त्याग दे। अर्थात् अपने द्वारा किये जाने वाले सभी शुभाशुभ कर्मों को ईश्वर को अर्पण कर दे।

6 वे अध्याय के 27 वें श्लोक में भी ऐसा ही निर्देश किया गया है -

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुह्योषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व सदर्पशम्।।

तू जो कुछ कर्म करता है, जो दान देता है, जो खाता है, जो पूजन-भजन करता है और जो तप करता है वह सब मेरे को अर्पण कर दे। ऐसा करने से तू कर्मबन्धन से मुक्त हो जायेगा और

मुझे प्राप्त कर लेगा।

भक्ति की महिमा बताते हुए भगवान आगे कहते हैं कि यद्यपि मैं सब प्राणियों में समभाव से व्यापक हूँ मेरे लिए प्रिय और अप्रिय कोई नहीं है फिर भी जो लोग भक्ति पूर्वक मेरा भजन करते हैं वे मुझमें वास करते हैं और मैं उनके अन्दर वास करता हूँ।

भक्तियोग को योगदर्शन में ईश्वर प्रणिधान कहा गया है तथा उसे अष्टाङ्गयोग का एक महत्वपूर्ण अंग बतलाया गया है। गीता के अनुसार चाहे कोई ज्ञानी हो या कर्मयोगी हो अन्त में उसे भक्ति का आश्रय लेना पड़ता है।

ज्ञान की परकाष्ठा एवं उसका फल बतलाते हुए गीता के 18 वें अध्याय में कहा गया है–

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न, शोचति न कांक्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु, मद्भक्ति लभते पराम्।।

भक्त्या मामभिजानाति, यावान्यश्चास्मि तत्वतः।

ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम्।।

ज्ञान की पराकाष्ठा के फलस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्न चित्त वाला योगी न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और किसी प्रकार की कामना ही करता है तथा सब प्राणियों में समान भाव रखता हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है।

उस भक्ति के द्वारा मेरा वास्तविक स्वरूप जानकर तत्काल ही मुझ में लीन हो जाता है। फिर उसकी दृष्टि में मुझ वासुदेव के सिवा और कुछ रहता ही नहीं।

अर्जुन को अपना विराट रूप तथा चतुर्भुज रूप दिखाने के पश्चात् 11 वें अध्याय के 53 वे और 54 वें श्लोकों में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि साधक अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरे इस रूप में दर्शन कर सकता है अन्य साधनों से नहीं। साथ ही 6 वें अध्याय के 22 वें श्लोक में भगवान ने यह घोषणा की है कि जो भक्तजन अनन्यभाव से चिन्तन करते हुए मुझ परमेश्वर को निष्कामभाव से भजते हैं उनका योग और क्षेम मैं वहन करतता हूँ। अर्थात् मैं उन्हें भगवत्प्राप्ति के निमित्त किये गये उनके योग–साधन की रक्षा भी मैं स्वयं करता हूँ। छठे अध्याय के 30 वें और 31 वें श्लोकों में जगदात्मा पुनः यह आश्वासन देते हैं – जो मुझे सर्वत्र देखता है और मुझमें सब कुछ देखा है उसके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता और मेरे लिए वह कभी नष्ट नहीं होता। अर्थात् मैं उनसे दूर नहीं रहता हूँ और वह मेरे से दूर नहीं रहता। तथा जो व्यक्ति एकीभाव में स्थित हुआ समस्त प्राणियों में आत्मरूप से व्याप्त मुझ सच्चिदानन्दघन परमेश्वर को भजता है, वह योगी सब प्रकार से व्यवहार करता हुआ भी मुझमें ही रमण करता है। क्योंकिक उसके अनुभव में मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं। यही भक्ति की पराकाष्ठा है और यही योग की उच्चतम भूमिका तथा गीता का सार है।

स्वास्थ्य

योग-आसन

मत्स्येन्द्रासन

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं, जानोर्वहिर्वेष्ठितवामपादम्।
प्रगृह्य परिवर्तितांगं श्रीमत्स्येन्द्रनाथोदितमासनं स्यात्।।

विधि – पद्मासन की विधि से अपनी बाई जंघा हर दाहिने पैर को जमाये तदनन्तर उस बायें पैर को उठाकर अपने दाहिने पैर के घुटने के ऊपर से लेकर दाहिनी ओर जमा कर रख लें, उसके बाद अपने दाहिने हाथ को घुमाकर उस ही दाहिनी ओर जमे हुए बायें पैर के घुटने को बायीं ओर लाकर दृढ़ता से उसी पैर के पंजे को पकड़ कर वहीं दृढ़ता से हाथ को जमाये रखें और सीधा बैठें इसी का नाम मत्स्येन्द्रासन है। इसी विधि से पैरों को बदल कर बायें पैर को दाहिनी जंघा पर रख कर व दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने के पास से खड़ा पंजा लगाकर बायीं ओर जमा दे। उसके बाद अपने बायें हाथ को उस दाहिने जमे हुए पैर दाहिनी ओर से घुमा कर उस दाहिने ही पैर के पंजे को दृढ़ता से पकड़ कर हाथ वहीं जमाये रखें, इस प्रकार यह आसन दोनों ओर से बदल–बदल कर किया जा सकता है इस आसन को करते हुए अपनी दृष्टि भ्रूमध्य रखनी चाहिए।

समय – पहली बार ही अभ्यास करने वाले को भद्रासन की तरह उसे भी 10 या 20 सैकन्डों से ही आरम्भ करना चाहिए, बाद में पाँच–पाँच सैकन्ड बढ़ा कर अभ्यास को ऊँचा बढ़ाया जा सकता है।

लाभ – इस आसन की विधि इस प्रकार की है कि जिसमें मेरुदण्ड स्वाभाविक ही सीधा रहता है, मेरुदण्ड के सीधे रहने से सुषुम्ना की गति स्वतः ही हो जाती है। अतः यह आसन मन की एकाग्रता का दाता है। कुण्डलिनी प्रबोध करने वाला है। पीठ में होने वाले व उदर में होने वाले सभी बात विकारों का नाशक है, जठराग्नि का वर्धक है। आँतों को पूरा–पूरा बल देता है। शौच शुद्धि के लिए भी उत्तम है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

कहाँ तक गाऊँ मैं बड़ाई गुरुदेव की

श्री जगदीश राए बंसल " अधम " मो. 9212434003

गतांग से आगे—

दूसरा कृपा प्रसंग सन् 1979 का मेरी धर्म परायणा पत्नि श्रीमती स्नेहलता से सम्बन्धित है। मेरी आदरणीय माताजी द्वारा देह त्याग स्नेहलता की उपस्थिति में ही हुआ था। अतः जीवन दाता महासिद्धियों के स्वामी गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की गुरू महिमाएं सुन–सुन कर श्रीमती जी गुरू निष्ठा में सराबोर रहने लगी। ऐसे तन्वीकरण को आप हमारे पूर्णकृत शुभाशुभम कर्मो का प्रतिफल कहिए अथवा अपने सिद्धानुकम्पा जी का संकल्प। परिणामतः जब–जब हमें अवसर प्राप्त होता तब–तब हम गुरू दर्शन की चाह में अपने सिद्ध आश्रम पहुँच ही जाया करते थे। सृष्टि पालक जी हम से हर बार कोई चाहत पूछ लिया करते थे, मगर हम मुस्का कर श्री चरणों में प्रणाम कर लेते थे। एक बार जब हम आशुतोष गुरू भगवान जी से अलंकृत भाषा में बतिया रहे थे तो मेरे मुख से निकल ही गया कि गुरूजी, कुछ आर्थिक कारण से हमको आपका दर्शन लाभ लेने में विलम्ब हो जाता है। अगर स्नेलता अध्यापिका लग जाए तो.........मात्र इतनी ही आधी–अधूरी प्रार्थना के संकेत पर आ गई लहर शिवा के मन में, तुरन्त आशीर्वादात्मक प्रसाद देकर श्रीमती जी का भाग्य उदय कर दिया।

जिसने गुरू रूप को-दिल में बसा लिया।
सोई हुई नसीब को-उसने जगा लिया।।

हुआ यह कि सन् 1979 में शिक्षा विभाग ने 29 शिक्षकों की भर्ती के लिए नोटिफिकेशन जारी किया। हमारे द्वारा आवेदन करने के पश्चात् उक्त विभाग से हमें लिखित टैस्ट का कॉल लैटर प्राप्त हुआ। इन 29 पदों के लिए लगभग 5500 परीक्षार्थी थे। स्नेहलता उस समय मीडल पास थी, जब कि इस प्रतिस्पर्धा में बहुत से परीक्षार्थी अच्छे पढ़े लिखे भी थे। परीक्षा के दिन श्रीमती जी, सिद्धों के सरदार गुरुदेव भगवान जी के दम पर बड़ी उत्कृष्टता से परीक्षा केन्द्र पर पहुँची। सर्वप्रथम उसने अपनी उत्तर पुस्तिका पर बहुत महीन अक्षरों में 'ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः' लिखा। तदउपरान्त आराध्या देव जी की रहमत से समयावधि में पूरा पेपर हल करके आहलादित मन से—

गुरुदेव जय जय सद्गुरु जय जय।
अखण्ड ज्योति प्रभु राम लाल जय जय।।

गुन गुनाती हुई घर लौट कर आई। परीक्षा परिणाम के दिन शिक्षा विभाग के नोटिस

बोर्ड पर स्नेहलता जी का नाम 30वें स्थान पर अंकित था। अब देखिए सर्व समर्थ्य जी का चमत्कार। बात ऐसे बनी कि जिन 29 पदों के लिए शिक्षकों का चयन हुआ था, उनमें से चार उमीदवारों ने एल.डी.टी. में प्रवेश नहीं लिया। कारण यह हुआ कि उनको कोई सीनियर पोस्ट का चान्स हाथ लग गया। इसी दरम्यान स्नेह जी प्रोढ़ शिक्षा से हायर सैकेण्डरी पास कर चुकी थी। अतः गुरूदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की अनुकम्पा से श्रीमती स्नेहलता एल.डी.टी. के लिए सहर्ष चुन ली गई। ऐसे श्री सिद्धयोग धिपती गुरूदेव जी महाराज को कोटिशः नमन।

इसी प्रकार से प्रातः स्मरणीय गुरूदेव भगवान अपनी कृपा लीलाओं के बादल हम पर सदैव बरसाते रहे हैं। एक बार सन् 1980–81 में जगत नियन्ता गुरूदेव जी का दतीया में योग प्रचार कार्यक्रम था। दतीया का नाम आते ही मुझे (ले.) कई बातें याद आ रही हैं जो हमारे आदरणीय दतीया निवासी गुरूभाई एवं भू. पू. एम.एल.ए. साहिब श्री चन्दन सिंह जी के अनुसार–महाभारत के शिशुपाल (जिसको भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से मारा था) के भाई दन्तवक्र की राजधानी होने के कारण इस शहर का नाम दतीया पड़ा जो आज उद्योग नगरी से भी जाना जाता है। पश्चात् पाण्डव के सहदेव ने दन्तवक्र से उसके राज्य को जीत लिया था। यहाँ पर धार्मिक राजा विजय बहादुर की तल्लीनता ने अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया था। अतः दतीया को लघु वृन्दावन भी कहा जाता है। यहाँ पुरातत्त्व विभाग द्वारा संचालित एक विशाल महल देखते ही बनता है। एक आदिकाल का बना तालाब भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त यहाँ दस महा शक्तियों में से एक बगला माता का भव्य मन्दिर एवं एक पीताम्बर देवी तथा धूमावती माता का विश्व विख्यात मन्दिर है। इन मन्दिरों में दर्शकों की लाईन टूटने का नाम नहीं लेती। यहाँ हमारे उच्च कोटि के नेता गण जैसे श्री कमला पति त्रिपाठी, श्रीमती इन्द्रा गाँधी, श्री प्रणव मुखर्जी एवं भू. पू. महामहिम महोदय आदि नेता बगला माता के मुख्य दर्शक रहे हैं।

अब अपने कालचक्र, युग चक्र और जग चक्र को चलाने वाले गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का हम पर जो आशीर्वाद एवं लोकोपकार है वह कथनी से परे है फिर भी कुछ–कुछ कह देता हूँ कि–

अपने आराध्य देव जी अपने योग प्रचार कार्यक्रम की स्वीकृति दीपावली के पश्चात् को ही देते थे। यहाँ दतीया में गुरूदेव भगवान की कृपाओं का इतना व्यापक और विशाल प्रभाव था कि हमारे दतीया नरेश भी अछूते नहीं रहे। वे सन् 1970 के कार्यक्रम में चौथे दिन अपने शास्कीय बाने में पूरे लाव लश्कर सहित सर्व समर्थ्य विश्व नियन्ता जी के – दर्शनार्थ मण्डप में पहुँच गए और गुरूजी से एकान्त में अनेक समस्याओं का निदान पा कर धन्य हुए। सन् 1960 में एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति अपने 18–19 वर्षीय लाड़ले पुत्र को लेकर आया। बोला–महाराज जी, इसका लीवर खराब है, दस्त–उल्टी–पीड़ा से परेशान है। पढ़ाई बन्द है, हड्डियों का ढांचा आपके सामने है.....डॉक्टरों ने लाईलाज घोषित कर दिया है.......और रोने लगा। संकट मोचन गुरूदेव भगवान ने आशीर्वाद देकर एक आदरणीय ब्रह्मचारी को उसे जीवन तत्त साधन

सिखाने को कहा। वह लड़का चार माह में ही पूर्ण स्वस्थ हो कर स्कूल जाने लगा। उस बालक का शुभ नाम था श्री रामबाबू जी।

सन् 1967 में मेरे पूज्य पिता श्री राम रूप सिंह पटेल जी को तीव्र उदर पीड़ा हुई। चिकित्सकों ने अपैन्डीक्स करार देकर ऑपरेशन में रिक्स बताया और असाध्य रोग कह कर पल्ला झाड़ लिया। येन केन प्रकारेण यह जटीलता गुरूदेव भगवान के संज्ञान में लाई गई। तापत्रय गुरूदेव जी ने ऐसा आशीर्वादात्मक प्रसाद दिया कि पिता जी द्वारा प्रसाद ग्रहण करते ही पीड़ा छू मन्त्र हो गई। इसी प्रकार दतीया के ही श्री शारदा शरण जी शुगर के कारण असहाय हो कर जीवन की आशा छोड़ चुके थे। अशरण–शरण के दाता जी के प्रसाद से सदा के लिए निरोग हो कर आनन्द का जीवन जीने लगे। और क्या–क्या बतलाऊँ, श्री अयोध्या तिवारी के पेट में पानी भर गया। परिणामतः पेट ने घड़े का आकार ले लिया था। परम हितकारी गुरूदेव ने प्रसाद देकर सदा के लिए नव जीवन प्रदान कर मंगलकारी धारा में ला दिया। अन्ततः यही कहूँगा कि गुरूदेव भगवान की करूणा कृपा को शब्दों की माला में पिरोना असंभव है।

अब हमारे मूल विषय के आदरणीय गुरूभाई श्री अमरनाथ जी बतलाते हैं कि हमने दतीया मण्डल द्वारा आयोजित ध्यान योग शिविर में महाप्रभुजश्री रामलाल जी महाराज दादा गुरू एवं मंगल मूर्ति गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दर्शन पाने एवं संपूर्ण कार्यक्रम का लाभ लेने हेतु चमचमाते योग पण्डाल में प्रवेश किया। त्रिलोकीनाथ गुरूदेव जी के श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम कर हम यथा स्थान पर बैठ गए। यहाँ के आदरणीय गुरु भाइयों ने दतीया को गुरूमय बना रखा था। अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड नामक जगत नियन्ता गुरूओं के महागुरू प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के भव्य स्वरूप को शृंगार के साथ सुसज्जित उच्च मंच पर विराजमान कर रखा था। सफेद धोती कुर्ते में सेठजी से लगने वाले स्वयं नारायण योग योगेश्वर गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अर्ध पद्मासन की शान्त मुद्रा में सजे–धजे पुष्प सुगन्धित भव्य आसन पर विराजमान थे। योग शिरोमणि सिद्धों के सरदार गुरूदेव जी का मुख मण्डल अध्यात्मिक तेज से ओत–प्रोत था। पण्डाल में ललीत स्वर से भजन बज रहे थे। गुरूदेव के पार्षद गणों में हर्षोल्लास, जिज्ञासुओं की चहल–पहल एवं आगन्तुक भक्तों के शिष्टाचार से आनन्द ही आनन्द बिखर रहा था। दिव्य कर्म योगी गुरूदेव भगवान के नियमित कार्यों में प्रातः मंगला आरती, गीता पाठ, यौगिक प्रवचन, ध्यानाभ्यास, योग दीक्षा, जीवन तत्त्व साधन, शंका–समाधान, आशीर्वाद एवं महिला मण्डल द्वारा यौगिक भजन आदि सुचारू रूप से चलते रहे थे।

योग शिविर के समापन दिवस पर विशाल भण्डारे की व्यवस्था मन मोहक थी। हमारा वहाँ से हटने का मन ही नहीं कर रहा था। करूणा सिन्धु पतित पावन गुरूदेव जी भाव विहल होकर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज से मिली सिद्धयोग निधि को अपने दोनों कर कमलों द्वारा लुटा रहे थे। गुरूदेव भगवान ने ओजस्वी स्वर से स्नेह लता को इंकित करते हुए पूछा कि "लल्ली क्या चाहिए?" प्रत्युत्तर में श्रीमती जी ने कहा, कुछ नहीं चाहिए गुरूजी। (योग के ऐसे

सिंगार सरोवर में गोता लगाने के पश्चात् किसी चाहत का—अस्तित्व ही नहीं रह जाता, फिर कौन क्या मांगेगा?)'' फिर भी घट–घट, पल पल के अन्तर्यामी आराध्य देव जी ने श्रीमती को अमरूद प्रसाद दिया और मन्द मन्द मुस्काए। उस समय तो हम कुछ नहीं समझ पाए, मगर सन् 1981 में श्रीमती स्नेह लता ने जब एक पुत्र–रत्न को जन्म दिया तब हमको लीलाधारी गुरु देव भगवान का ''मुस्काना संकल्प'' समझते देर न लगी और गुरूदेव जी के इसी संकल्प से नवजात शिशु को ''संकल्प'' के नाम से ही जाना जाने लगा। हमारे सभी आदरणीय गुरु भाई बहिन जानते हैं कि सिद्धों के संकल्प में ही सकल कल्याण चिह्नित होते हैं।

प्रिय सुपुत्र संकल्प का जीवन भी गुरू कृपाओं से लबालब भरा है। संक्षेत में कहें तो सर्व सिद्ध शक्ति दाता गुरूदेव भगवान की कृपा लीलाओं से संकल्प बड़ा हुआ, शिक्षित हुआ, शुभ विवाह बन्धन के सूत्र में बन्ध गया और जगत नियन्ता की कृपा से ही सन् 2011 में हमें एक नन्हें–गौर वर्ष पौत्र के दादा–दादी बनने का गर्व प्राप्त हुआ। नवजात शिशु का प्यारा–प्यारा रोदन सुनकर शरीर पुलकित हो उठा। आनन्द सिन्धु गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की विशेष कृपाओं से हमारा गरीब कुटीर गुरू मय बन गया। आप भी बोलिए—

विष्णु का सुदर्शन बोलै, हे गुरू देव प्रणाम तुम्हें
नारद की बीणा बोलै, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें
कैलाश पै नन्दी भृंगी बोलै, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें
सिद्ध गुफा का कण–कण बोलै, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें
मेरे संग गुरूभाई बोलै, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें।।

परन्तु सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं कि गहना कर्मणो गतिः यानि इसी हर्षोल्लास और बन्धु–बान्धवों की बधाईयों के साथ–साथ हमें एक हतोत्साहित चिन्ता डायन सताने लगी, वो यह कि इस नवजात प्यारे–प्यारे पौत्र के पैरों के पन्जे तिरछे हैं। जगह–जगह दिखलाया फिर छः माह ग्वालियर में विशेषज्ञों से उपचार करवाया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अब क्या करें, कहाँ जाएँ? इस प्रकार की प्रतिकूल स्थिति में गुरुदेव महाराज का स्मरण होना स्वाभाविक ही है।

गुरूदेव के सिवा और कहाँ आस है।
हमारे भाग्य की चाबी तो गुरू के पास है।।

महासिद्ध योग योगेश्वर अनन्त गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा हम पर की गई अनेकानेक अलौकिक कृपा लीलाओं को शिरोधार्य कर हम इसी महत्वाकांक्षा में रहे कि हे शरणागत वत्सल, ब्रह्माण्ड के स्वामी, त्रयताप हारी, भक्ति–मुक्ति के दाता, रोगों का निर्वाण करने वाले, रोगों को हरने वाले सिद्धों के सम्राट, हम पूजा–पाठ, जप–तप, कुछ नहीं जानते,

केवल आपके श्री चरणों में अपनी अनवरत मनुहार कर रहे हैं कि–
तर्ज–गाड़ी आले–

संवाई आले, पंजे सीधा दे, रख दे सिर पर हाथ।

गुरूजी हम हार गए।

यह अनजाना बच्चा है, अपनी उम्र का कच्चा है,

आसरा तेरा पक्का है, परिवार दया को तड़फता है

देख अबोध का हाल

गुरू जी........

शबरी जैसी भक्ति नहीं, मीरां जैसी शक्ति नहीं,

पतंजली जैसी बूटी नहीं, शारदा जैसी शुद्धि नहीं

आप ही करो उपचार

गुरु जी........

किसी को पता हो, ना हो मगर चींटी के पग नुपुर बाजें तो भी हमारी सरकार सुन कर अपनी करुण कृपा से बड़े से बड़े अनिष्ट दूर कर देते हैं। परिणामस्वरूप गुरूदेव की असीम कृपा से हम पर तीव्र श्रद्धा का अंकुर फूट पड़ा और गुरू मन्त्र का जुनून मेरे स्वासों से जुड़ गया। ध्यानाभाषी श्रीमती जी तो ध्यान मग्न हो गईं।

आ गई लहर शिवा के मन में

स्वयं नारायण गुरूदेव भगवान ने श्रीमती स्नेहलता को ध्यान में आशीर्वात्मक आदेश दिया कि ''लल्ली, श्री सिद्ध गुफा की रज बच्चे की अंगुलियों पर लगाओ और आने वाली राम नवमी पर संवाई अवश्य आओ, श्री प्रभु जी सब ठीक करेंगे।'' हमने गुरू आज्ञा का अक्षरतः पालन किया। और आप सब जानते ही हैं कि गुरू वचन पलटै नहीं, पटल जाए ब्रह्माण्ड के अनुसार बच्चा पूर्ण रूप से सदा के लिए ठीक हो गया। बोलिए–

गोविन्द जय-जय-गोपाल जय जय।
बाँके बिहारी, प्रभु-राम लाल जय जय।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

पाश्चात्य मनोविज्ञान और योग-मनोविज्ञान की दृष्टि में–

व्यक्तित्व का निर्माण कैसे ?

श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह, एम. ए.

प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में अपना एक अलग व्यक्तित्व रखता है। किसी एक व्यक्ति का स्वभाव, उसकी रुचियाँ, उसकी कार्य–शैली उसके भाव तथा संवेग उसके गुण व व्यवहार अन्य व्यक्तियों से भिन्न होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में अपनी विशिष्ट शैली में व्यवहार करता है। मनुष्य का व्यवहार उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। इस व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होता है ? इसका उत्तर पाश्चात्य मनोविज्ञान और योग–मनोविज्ञान अपने–अपने ढंग से देते हैं जिन पर हम क्रमशः विचार करेंगे।

पाश्चात्य मनोविज्ञान का दृष्टिकोणः–

मानव के व्यक्तित्व का निर्माण वंशानुक्रम (Heredity) व वातावरण अथवा परिवेश (Environment) के द्वारा होता है। वंशानुक्रम व वातावरण–ये दोनों तत्त्व व्यक्तित्व के निर्धारक हैं। किन्तु मानव व्यवहार इतना जटिल होता है कि इन दोनों में से किसी एक कोही सबसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता है। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि मनुष्य के व्यक्तित्व–निर्माण पर इन दोनों का अलग–अलग क्या प्रभाव पड़ता है ? वंशानुक्रम का प्रभाव–

स्त्री और पुरुष के उत्पादक अंगों में कुछ कोश (Cell) पाये जाते हैं जिन्हें जनन–कोश कहते हैं। पुरुष के जनन–कोष को शुक्रकीट और स्त्री के जनन–कोश को डिम्ब कहते हैं। इन जनन–कोशों के अन्दर पित्रैक (Chromosomes) पाये जाते हैं, और इन पित्रैकों के भीतर जनक (Genes) होते हैं जो वंशानुक्रम वाहक कहलाते हैं। यही व्यक्तियों की विभिन्नता के मूल कारण होते हैं।

एक बार के सम्भोग में पुरुष से कई करोड़ शुक्रकीट निकलते हैं किन्तु स्त्री के डिम्बाशय से महीने भर में केवल एक ही डिम्ब निकलता है। पुरुष के करोड़ों शुक्रकीटों में से केवल एक ही शुक्रकीट का संयोग इस डिम्ब से होता है जिसके फलस्वरूप गर्भधारण होता है। स्त्री और पुरुष के जनन के कोशों में एक ही प्रकार के 23 पित्रैक होते हैं जिन्हें शरीर–सूत्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त एक–एक यौन पित्रैक भी होते हैं। स्त्री के यौन पित्रैक का नाम एक्स (X)। पुरुष में दो प्रकार के यौन पित्रैक पाये जाते हैं जिनके नाम हैं एक्स और वाई (X and Y)। इस प्रकार स्त्री और पुरुष में कुल मिलाकर अड़तालीस (48) पित्रैक पाये जाते हैं। जब स्त्री के चौबीस (24) एक्स (X) पित्रैक पुरुष के चौबीस (24) एक्स (X) पित्रैक से मिलते

है तब कन्या उत्पन्न होती है किन्तु जब स्त्री के (24) एक्स पित्रैक पुरुष के तेईस (23) एक्स तथा एक वाई (Y) पित्रैकों से मिलते हैं तब पुत्र उत्पन्न होता है। इसका सूत्र इस प्रकार है–

24 X + 23 X + 1 X = कन्या

24 X + 23 X + 1 Y = पुत्र

जनकों के द्वारा माता–पिता के शील व गुणों का स्थानान्तण उनकी सन्तानों में होता है। यही वंशानुक्रम या वंशपरम्परा है मनुष्य को वंशानुक्रम से निम्नलिखित विशेषताएँ प्राप्त होती हैं–

(1) ग्रन्थियाँ, जैसे, (क) नलिका युक्त ग्रन्थियाँ जो अपना स्राव नलिका द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती हैं। (ख) नलिका विहीन ग्रन्थियाँ जो अपना स्राव रक्त में सीधे उड़ेल देती हैं। इनमें कोई नलिका नहीं होती है। इन ग्रन्थियों का व्यक्तियों के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये ग्रन्थियाँ हैं–गल–ग्रन्थियाँ, अग्न्याशय, अधिवृक्क, जनन ग्रन्थियाँ और पोषग्रन्थि।

(2) स्नायु संस्थान–स्नायु संस्थान पर अनेक मानसिक क्रियायें, जैसे, स्मृति, निरीक्षण, प्रतिक्षेप, विचार, इत्यादि, आधारित होते हैं। मनुष्य के बाह्य व्यवहार तथा बुद्धि की मात्रा स्नायु संस्थान के द्वारा ही प्रभावित और निर्धारित होते हैं।

(3) मूल प्रवृत्तियाँ, चालक तथा आन्तरिक प्रवृत्तियाँ।

(4) उद्वेग और आन्तरिक स्वभाव जैसे, क्रोध, भय, प्रेम, चिड़चिड़ापन, दयालुता इत्यादि।

(5) शारीरिक रचना।

वातावरण का प्रभाव–

वातावरण कई प्रकार का होता है जैसे, प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक। प्राकृतिक वातावरण में भौगोलिक स्थिति महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ठण्डी जलवायु के लोग परिश्रमी और क्रियाशील होते हैं। गर्म जलवायु के लोग आलसी होते हैं। पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों का शरीर पुष्ट होता है और वे परिश्रमी होते हैं। किन्तु गर्म और नम जलवायु के निवासियों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता। सामाजिक वातावरण में माता–पिता का प्रभाव, परिवार के अन्य सदस्यों का आपसी सम्बन्ध तथा उनके चरित्र और व्यवहार बालक के व्यक्तित्व निर्माण पर गहरी छाप छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त पड़ोसी, संगी–साथी, विद्यालय, पुस्तकें एवं चित्र, क्लब, चलचित्र, मेला और धार्मिक स्थान इत्यादि भी मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं। मैलीनोस्की आर मारग्रेट की खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि व्यक्तित्व के निर्माण में सांस्कृतिक वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व का निर्माण सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप होता है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण आज भारतीय समाज के व्यक्तियों में असंयम, अनुशासनहीनता, चरित्र भ्रष्टता और

अर्थ–लोलुपता आदि दुर्गुणों की प्रधानता देखी जाती है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि वंशानुक्रम नहीं वरन् वातावरण ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है। वाट्सन ने तो यहाँ तक कहा है कि ''तुम मुझे कोई भी बालक दे दो और मैं उसे कुछ भी बना सकता हूँ।''

पाश्चात्य मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक संस्थानों का गत्यात्मक संगठन (Olynamic Organization) है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्वसमायोजन को निर्धारित करता है। इस प्रकार व्यक्ति में एक मन होता है और एक शरीर होता है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में एक अलग विशेषता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक गुणों का निर्माण वंशानुक्रम तथा वातावरण के द्वारा होता है।

आधुनिक मनोविज्ञान भौतिकवाद पर आधारित है। यही कारण है कि वह इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात पदार्थों के अतिरिक्त किसी और पदार्थ की सत्ता नहीं मानता। भारतीय मनोविज्ञान तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान में अन्तर का मुख्य यही कारण है। वास्तविकता तो यह है कि इन्द्रियों द्वारा ज्ञात वस्तुओं की अपेक्षा उन वस्तुओं की सत्ता अधिक स्थाई है जो इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है। वास्तव में पाश्चात्य मनोविज्ञान अपने गलत आधार के कारण अपूर्ण है और सदैव अपूर्ण रहेगा। क्या पाश्चात्य मनोविज्ञान यह बता सकता है कि निरन्तर परिवर्तनशील होते हुए भी व्यक्तित्व में स्थायित्व क्यों है ? व्यक्ति में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं फिर भी हम उसे अन्य क्यों नहीं समझते ? एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न क्यों है ? वह अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व क्यों रखता है ? ऐसे बहुत से प्रश्न हैं जिनका उत्तर आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान नहीं दे सकता।

पाश्चात्य मनोविज्ञान यह मानता है कि मृत्यु के साथ ही व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों समाप्त हो जाते हैं किन्तु परामनोविज्ञान के आधुनिकतय अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि मृत आत्मायें इस संसार के व्यक्तियों पर अपना प्रभाव डालती हैं। हेरवार्ड कैरिंगन ने तो अपना सारा जीवन ही इस बात की खोज में लगा दिया और अन्त में यह सिद्ध कर दिया कि मृत्यु के पश्चात भी व्यक्तित्व की सत्ता रहती है। मृत्यु से व्यक्तित्व का अन्त नहीं होता। स्थूल शरीर का अन्त तो हो जाता है किन्तु सारे संस्कारों और वासनाओं से युक्त सूक्ष्म शरीर विद्यमान रहता है जो दूसरों को प्रभावित करता रहता है। राम, कृष्ण, बुद्ध इत्यादि महापुरुष भौतिक रूप से मर चुके हैं किन्तु उनका व्यक्तित्व आज भी विद्यमान है और समाज को प्रभावित कर रहा है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा है कि भौतिक शरीर तथा मष्तिष्क से दोनों स्थूल हैं जो मानसिक गुण मष्तिष्क से पैदा होते हैं वे भी स्थूल शरीर के नष्ट होने के साथ–साथ समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। किन्तु व्यक्तित्व के बारे में यह धारणा मूर्खातापूर्ण है। निरन्तर परिवर्तित होने के बावजूद भी व्यक्तित्व में एक स्थायित्व और तादात्म्य है। इस तादात्म्य का अवश्य ही कोई स्थायी आधार होगा जो स्वयं परिवर्तित नहीं होता। किन्तु

यह विषय अध्यात्म और दर्शन–शास्त्र का है न कि मात्र इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित रहने वाले आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान का।

योग के अनुसार व्यक्ति का निर्माण स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा आत्मा से मिलकर होता है। व्यक्तित्व का उद्‌भव वर्तमान जन्म से ही नहीं होता वरन् वह अनादि काल से चला आ रहा है। व्यक्तित्व में कर्माशय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। कर्म की वासना को कर्माशय कहते हैं। क्लेश ही कर्माशय की जड़ है। क्लेश कर्माशय का कारण है जो मनुष्य को संसार चक्र में डालती है–

क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्म-वेदनीय:। (योग सू. 2/12)

अर्थात् क्लेश जिसकी जड़ है ऐसी कर्मों की वासना वर्तमान और अगले जन्मों में भोगने योग्य है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:। (योग सू. 2/13)

अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के होते हुए उस (कर्माशय) का फल जाति, आयु और भोग होता है।

आत्मा अनादि काल से इस संसार–चक्र में पड़ा है। अत: आत्मा का चित्त से अनादि–काल से सम्बन्ध होने के कारण चित्त पर अनेक जन्मों के कर्मों के संस्कार एकत्रित हैं। पूर्वजन्मों के संस्कार हमारे जीवन को प्रभावित करते रहते हैं। उन संस्कारों से ही हमारा वर्तमान जीवन तथा भविष्य निर्मित होता है। समस्त कर्मों के संस्कार चित्त में अज्ञान शक्ति के रूप में जमा रहते हैं। मृत्यु के समय कुछ संस्कार जाग्रत हो उठते हैं जो अगले जन्म के लिए प्रारब्ध का निर्माण करते हैं। उस प्रारब्ध के अनुसार व्यक्ति जन्म लेता है तथा उस प्रारब्ध द्वारा निश्चित किये हुए भोगों को भोगने लायक शरीर धारण करता है। अत: व्यक्तित्व में परिवर्तन पूर्वजन्मों के कर्मानुसार बहुत कुछ हद तक निर्धारित हो जाता है। प्रारब्ध = निर्दिष्ट कर्मों को भोगने के लिए विशेष माता–पिता के द्वारा विशेष घर में जन्म होता है। अत: प्रारब्धानुसार ही उसको माता–पिता, शरीर की आकृति, उद्वेग आदि मानसिक गुण तथा वातावरण इत्यादि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार धर्माधर्म रूप कर्माशय के द्वारा जन्म, आयु तथा भोग प्राप्त होते हैं जिनमें पाप और पुण्य के अनुसार सुख–दुख मिलता है।

ते ह्लादपरितापफला: पुण्यापुण्यहेतत्वात्। (योग सू. 2/14)

इस पर व्यास भाष्य इस प्रकार है–

ते जन्मायुर्भोगा: पुण्यहेतुका: सुख-फला अपुण्यहेतुका: दु:खफला इति।

अर्थात् जीव के भोगादि कर्म पुण्यजनित हों तो फल सुख है और पापजनित हों तो फल दु:ख है।

आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान केवल इतना ही कहकर चुप हो जाता है कि व्यक्तित्व का निर्माण वंशानुक्रम और वातावरण के द्वारा होता है किन्तु योग मनोविज्ञान इससे भी आगे

जाता और कहता है कि वंशानुक्रम तथा वातावरण का भी निर्धारण हमारे पूर्व–जन्मों के कर्मों से होता है। इतना ही नहीं वह यह भी बतलाता है कि व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छा–शक्ति का सदुपयोग करके पुण्य कर्मों के द्वारा अपनी जाति, आयु और भोग में अपनी इच्छानुसार अनुकूल परिवर्तन कर सकता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा बतलाये गये व्यक्तित्व के समस्त निर्धारकों, जैसे शरीर की आकृति, रूप–रंग, पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाओं में अपने पुरुषार्थ से परिवर्तन ला सकता है। मनुष्य वर्तमान व्यक्तित्व में भी अपने पुरुषार्थ के द्वारा बहुत कुछ परिवर्तन ला सकता है।

योगशास्त्र व्यक्तित्व को विकसित करने का मार्ग भी बतलाता है। ये मार्ग योग के आठ अंग हैं। व्यक्तित्व के विकास की चरम अवस्था कैवल्य मुक्तावस्था है। मुक्तावस्था प्राप्त करने से पूर्व सभी आत्मायें अपने–अपने सूक्ष्म शरीरों से सम्बन्धित रहती हैं। सूक्ष्म शरीर में ही कर्माशय रहता है। जब तक आत्मा का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से बना रहता है तब तक आवागमन का चक्र अथवा व्यक्तित्व का परिवर्तन चलता रहता है। कैवल्यावस्था प्राप्त होने पर आत्मा अपने वास्तविक व्यक्तित्व में स्थित हो जाता है और उसका अलग अस्तित्व भी बना रहता है।

"मन में भय, अशान्ति, उद्वेग और विषाद को स्थान न दो। भगवान् की दया अथवा आत्मा की पवित्रता और नित्यता पर विश्वास रखकर सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहने का यत्न करो।"

मन रूपी दर्पण

श्रीमती सरिता भारद्वाज

मन एक दर्पण के समान है। दर्पण का काम है वस्तु के स्वरूप का यथार्थ बोध करा देना। दर्पण शब्द बहुत सार्थक है। जो दर्प अर्थात् घमण्ड को न रहने दे वह दर्पण होता है। महाराजा दशरथ विषय भोगों और राज सत्ता के रागरंग में अपनी असलियत को भूले हुए थे। एक दिन उन्होंने हाथ में दर्पण लेकर रौब से देखा। दर्पण ने उनका अज्ञान चूर–चूर कर दिया। उन्होंने देखा–

श्रवण समीप भयउँ सित केशा।

कानों के समीप बाल सफेद हो गये हैं, मानो वृद्धावस्था का स्पष्ट संकेत हो रहा है। अब **'सब तजि हरिभज '** का समय जान दशरथ के मन में विषयों से वैराग्यभाव का उदय हुआ। नारद जी विश्वमोहनी के स्वयम्वर में अकड़ कर बैठे हुए थे। उनके मन में गलत–फहमी थी, कि विश्व में वे सबसे अधिक सुन्दर हैं। जब हरि के गण उनकी ओर कनखियों से बार–बार देखकर मुस्कराये तो नारद जी को क्रोध आया। ' इन मूर्खों की ये जुर्रत कि मेरा मजाक उड़ायें ?' जब उन्होंने दर्पण देखा तो **'मर्कट बदन भयंकर देही'** वानर की आकृति देखकर तन बदन में आग लग गई और यथार्थ को स्वीकार करने की अपेक्षा निज अज्ञानवश भगवान विष्णु को शाप दे डाला। मन का दर्पण जगत और जगदीश्वर दोनों को दिखाने वाला होता है। ज्ञान रूपी नेत्रों से मनरूपी दर्पण में समस्त विश्व के कार्य तथा कारण सूक्ष्म तन्मात्रा, अन्तःकरण चतुष्टय मूल प्रकृति पर्यन्त सब कुछ देखकर निस्त्रैण्यता की ओर गमन किया जाता है। तभी जन्म–मरण तथा कर्म जाल की कारण भूता अविद्या का नाश होता है। अविद्या की निवृत्ति ही योग की स्थिति है।

जब आँखों से दिखाई न पड़ता हो तथा मन रूपी दर्पण भी गंदा हो तो फिर स्वरूप की पहिचान कैसे हो सकती है। गोस्वामी तुलसीदास जी एक अर्धाली में योग का पूरा सिद्धान्त कह देते हैं:–

नयन अंध मन मुकुर मलीना।
राम रूप देखहिं किमि दीना।।

प्रभु दर्शन या आत्म साक्षात्कार के लिए दो आवश्यकतायें हैं एक बुद्धि सूझबूझ वाली, विमल विवेक युक्त हो दूसरे मन विषयों की धूल से मलिन न हो। दोनों में से एक चीज की भी कमी होगी तो गाड़ी बीच में अटक जायगी। दर्पण का स्वभाव वस्तु के रूप को दिखाना है। मन जब इन्द्रियों के साथ जुड़ जाता है तो इन्द्रियों को विषय लोलुप बना देता है जैसे मृग रेगिस्तान में रेत की लहरों को जल समझकर व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार मन विषयों में सुख शान्ति

और आनन्द का आभास कर इन्द्रियों तथा बुद्धि को भ्रमित कर डालता है। दर्पण की एक और विशेषता है, दर्पण दोष देखने के काम आता है, वह आदर्श कहा जाता है। वह बता देता है कि कहाँ क्या कमी है? प्रायः मनरूपी दर्पण दूसरों के दोष देखने का काम किया करता है। सुबह से शाम तक हमारा मन रूपी दर्पण दूसरों के दोषों को देखने से मैला होता रहता है। मन का सबसे निकट का सहायक रसना है। मन के इशारे पर रसना भी परनिन्दा में बहुत रस लेती है। जब दो लोग मिलते हैं तो जब तक किसी के निन्दा के कुछ शब्द न कहलें तब तक दिल को तसल्ली नहीं हो पाती। आजकल निन्दा रस सबसे मधुर रस माना जाता है।

परनिन्दा सम अध न गिरीशा।

इस अर्धाली के एक अंश में गोस्वामी ने कहा है कि परनिन्दा से दूसरे का कुछ भला नहीं होता हाँ अपना मन दूसरे के दोषों के सूक्ष्म परमाणुओं से अवश्य गन्दा हो जाता है। मुकुर का स्वभाव है कि वह दूसरों के दोष देखना जानता है अपने पीछे पीठ पर लगी हुई गन्दगी को नहीं जानता। यदि अपने दोषों को दर्पण देख सके तो मन की एकाग्रता तथा चित्त की शुद्धि आसानी से सम्भव हो सकती है। सन्त कबीर आदि ने इसी रहस्य को सीधे–सीधे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है–

बुरा जो देखने मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजूँ आपणा, मुझ से बुरा न कोय।।

अपनी पहचान ही सच्ची पहचान है। यही आत्म साक्षात्कार है अपने मन की जाँच पड़ताल, उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते–फिरते करते रहने से मन रूपी दर्पण में ठीक–ठीक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगा। जब तक मन रूपी दर्पण इस प्रकार न हो जाय कि बाहर और भीतर ऐ जैसा दिखाई पड़ने लग जाय,मन–वाणी और कर्म में कोई अन्तर न रहे; तब तक मन पर कतई भरोसा नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह मन बहुत बड़ा बहुरूपिया है। क्षण में ज्ञानी, क्षण में योगी, क्षण में चोर और क्षण में साधु बनकर संस्कार चक्र घुमाता रहता है। जो कोई साधक श्री गुरु–चरणों की अनन्य भक्ति से इस मन की चाल पहिचान लेता है वह इसके पीछे का मैल साफ कर इसे पारदर्शक बना लेता है। जीवन्मुक्ति का आनन्द साफ मन में ही प्राप्त होता है। राम चरित मानस में कहा है।

निरमल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

मन जब मलिन होता है तभी कपट, छल छिद्र, दम्भ, पाखण्ड आदि विकार घेर लेते हैं मन की मलिनता जब तक दूर नहीं होती तब तक साधक सहज तथा सरल नहीं बन पाता। बिना सहज तथा सरल बने सहज एवं अविनाशी का साक्षात्कार नहीं हो पाता। गीता में भगवान ने दैवी सम्पत्ति के प्रसंग में साधक की एक दैवी सम्पत्ति **'आर्जव'** बताई है। आर्जव का अर्थ है सरलता, निष्कपटता।

सहजै सहज मिलै रघुराई।

जीवन्मुक्त के स्वरूप का विवेचन करते हुए मोक्ष शास्त्रों में दर्पण की एक सुन्दर उपमा आती है। शिष्यों ने गुरुदेव से पूछा– 'प्रभु जीवन्मुक्त होने पर जीवन कैसा हो जाता है ?' गुरुदेव ने कहा– " प्रिय ! जिस प्रकार निर्मल दर्पण के पीछे रत्न की ज्योति रखी हो तो वह जैसे हर समय साफ–साफ झलकती है बाहर और उस आत्मा की ज्योति के बीच में झीना–झीना मन रूपी दर्पण का परदा (प्रारब्ध कर्मभोग) रहता है। लेकिन वह भी इतना निर्मल होता है कि लगता ही नहीं जैसे बीच में कोई परदा हो ?" जो अपने मन–मुकुर को संस्कारों की गंदगी से हर समय झाड़–पोंछ कर साफ सुथरा करते रहते हैं उनका मन एक दिन ऐसा ही बन जाता है कि वे इस जीवन में ही योग की सविकल्प तथा निर्विकल्प भूमिकाओं में अक्षय आनन्द का अनुभव कर लेते हैं। ऐसे पुण्यात्मा जीवन्मुक्त बन जाते हैं।

मन की मलिनता कैसे दूर हो? इसकी मलिनता दूर करने के लिए लोग तरह–तरह के वेश बनाते हैं, व्रत, उपवास तथा तीर्थ करते हैं। इनसे कुछ–कुछ सफाई होती है, वह भी तब जब इन साधनों में सोलह आना दृढ़ विश्वास हो। देखा देखी से कुछ अधिक लाभ नहीं होता। हाथी जैसे स्नान कर साफ हो जाता है फिर कुछ ही देर में सिर पर धूल डालकर जैसे का तैसा बन जाता है। उसी प्रकार तीर्थ व्रत करते समय मन लगता है, जैसे पूर्ण संत बन गया हो किन्तु मौका मिला नहीं कि परनिन्दा, विषय वासना, कामक्रोध लोभ के पीछे कुत्ते की तरह भागने वाला बन जाता है। तब तक मन पर पूर्ण सद्गुरु की कृपा नहीं होती जब तक यह ज्ञान वैराग्ययुक्त होकर शौचाचारयुक्त नहीं बन पाता। गोस्वामी जी मन मुकुर की सफाई का अनूठा उपाय बताते हैं:–

श्री गुरुचरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।

शीशे की सफाई रजकणों से करते हैं उससे शीशा साफ दमकने लगता है। श्री गुरुदेव के चरणकमल की रज से जब यह मन मुकुर मांजा जायगा तो इसकी मलिनता दूर हो जायगी। मन जितना कोमल और नाजुक है–शीशे से भी ज्यादा नाजुक है। किसी की याद में ही टूट कर बिखर जाता है– उसकी सफाई के लिए उसी तरह की कोमल रज चाहिए। कमल के पराग से कोमल क्या वस्तु होगी ? श्री गुरुदेव के चरण कमलों, के पराग से मन मुकुर साफ होगा। कैसे होगा ? **'सुधारि'** अच्छी तरह ह्रदय मन्दिर में चरणकमलों को धारण करने से। अपने मन को चरणकमल के पराग का लोभी भौंरा बना देने से। श्रीगुरु चरणों का ध्यान करने से। क्योंकि ध्यान का मूल आधार **'ध्यानमूलं गुरोमूर्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्'** श्री गुरुदेव के चरणकमल हैं। उनका दिव्यवपु ध्यान का मुख्य साधन और साध्य है। चरण कमल पूजा के मूल में सिद्धि के हेतु है। गोस्वामी जी सिद्धयोगी थे। अतः उन्हें भगवान शंकर जी की कृपा शक्ति के पात से–साधना के सभी रहस्य स्पष्ट अनुभव अभ्य हो गये थे। उन्होंने सिद्धयोग के साधकों के लिए एक अचूक, अमोघ–रामवाण औषधि ढूँढ निकाली– श्री गुरुदेव के चरणों की निष्काम भक्ति,ध्यान तथा गुरुपदिष्ट मंत्र का सतत जप। उसी से दिव्य दृष्टि पाकर साधक अपने मन चित्त तथा बुद्धि में संस्कार चक्रों का दर्शन कर सारे संस्कारों को भोगकर खत्मकर सकता है और इसी जन्म से जीवन्मुक्त हो सकता है। श्री गुरुदेव के चरण–कमलों की रज नेत्रों को दिव्य दृष्टि प्रदान करने वाली है–

श्री गुरुपद रज मणिगण ज्योती।

सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

तथा–

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन।

नयन अमिय दृग् दोष विभंजन।।

नेत्रों का दोष भ्रम, संशय तथा मिथ्या प्रतीति है। यदि नेत्रों में पीलिया हो जाय तो हर चीज पीली ही पीली नजर आती है। इसी तरह जब अज्ञान और अविद्या के कारण ममता मोह तथा अहंकार तथा कामनायें नेत्रों को अंधाकर देती हैं। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ढककर अन्यथाभास होने लगता है। इसे वेदान्त की भाषा में आवरण तथा विक्षेप कहते हैं। आवरण तथा विक्षेप ही नेत्रों का अन्धापन है जिसके मूल में कामनाओं का वृत्ति प्रवाह रहता है। गोस्वामी जी इसलिए कहते हैं–

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही।

तथा–

ममता तिमिर तमी अँधियारी।।

ममता, अहंता तथा स्वार्थ वस्ता अपने दोष न देखकर दूसरों में दोष देखने का आदी बना देती है। कहा जाता है कि– " **अर्थी दोषं न पश्यति** " ममता वश व्यक्ति को अपने गुण ही दिखाई पड़ते हैं और दूसरों के अन्दर दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। जब साधक पर गुरु कृपा होती है तब उसका हृदय दूसरों के गुण देखता है और अपने अन्दर के दोष ढूँढ–ढूँढ कर निकाल देता है। यदि कूड़ा कचड़ा दबाकर रखा जाएगा तो एक दिन सड़कर रोगी मर सकता है। यदि मन के दोषों की कड़ी जांच पड़ताल होती रही, – प्रतिदिनआत्म निरीक्षण, संध्या सम्यक् धारणा ध्यान होता रहे तो मन की दौड़ कम होने लगती है। मन बहिर्मुखता से मुड़कर अन्तर्मुखी बनने लगता है जिससे बुद्धि तथा चित्त का साथी बन जीवन के कर्त्तव्य का ठीक–ठीक बोध करा दिया करता है। मन पर मंत्र का पहरा बैठाना जरूरी है। खाली मन शैतान का अड्डा। वृत्ति संस्कार चक्र जप द्वारा बदलता है। यदि क्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार प्रवाहित हो रहे हैं तो जप तथा ध्यान से वृत्ति चक्र ठहर जायगा। यदि धारणा और ध्यान समाधि में परिणत होने लगता है तो उस समय ध्येय रूप के गुणों का प्रवाह चल पड़ेगा। ध्यान होगा ही सतोगुण की बढ़ी हुई दशा में। अत: यह निश्चित है कि समाधि दशा में सतोगुणी वृत्तियों का सबल प्रवाह होने से अक्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार उदित होकर सुख और शांति का अनुभव होगा। गुरुपदिष्ट मंत्र का मनोजय कर मन को उसके अर्थ में भावविभोर कर लेने पर मन का दर्पण उजला बन जायगा। सन्त रज्जव ने नाम जप तथा ध्यान को मन की निर्मलता के लिए परमावश्यक माना है :–

' नाम बिन मन निर्मल नहि होय '

आन उपाय अनन्त अघ लागैं,

बहुत भांति कर जोय।
योग यज्ञ जप तप व्रत संयम,
करते हैं सब लोग।।
धर्म नेम दान पुनि पूजा,
मुक्त सुन्या न कोय।
ज्ञानी गुणी शूर कवि पण्डित,
ये बैठे सब रोय।।
मरम न भूल समझ सुन प्राणी,
यहु साबुण नहिं सोय।
जन रज्जब मन होय न निर्मल,
जल पाषाणहि धोय।।

जप और ध्यान से मन में आत्म–प्रकाश हो जायगा फिर जीवन गुणग्राही बन जायगा। मन बुरा सोचने और बुरा करने से स्वयं भाग खड़ा होगा। जीवन में पुण्य कर्मों की बाढ़ आने लगेगी। हर क्षण हर घड़ी चारों ओर आनन्द की वर्षा होनी शुरू हो जायेगी। यह जगत विषम ज्वाला से जलते जंगल से बदल कर कुसुमित नन्दनवन बन जायगा जहाँ जीवन और मृत्यु दोनों के ही महोत्सव लगने लगेंगे।

मां चेन्न पास्यसि ततो भगवन्ममैव
हानिर्भवेदिति तु नो मननीयमीश।
यर्वेश्वरस्य करुणादिगुणामृताब्धे-
र्दासो हि सीदति जना इति वै क्षिपेयुः।।

भगवन् ! हे ईश ! आप यदि मेरी रक्षा न करेंगे तो आप यह न समझें कि उससे केवल मेरी ही हानि होगी; किन्तु 'अहा देखो, सर्वेश्वर का सेवक होकर भी दुःख पा रहा है' यह कहकर जनता भी आपको उलाहना दिये बिना नहीं रहेगी।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योगासनों द्वारा पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ

ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी

श्री मत्स्येन्द्रनाथ श्री गोरक्ष–नाथ श्री जालन्धर नाथ आदि प्राचीन, श्री रामलाल आदि अर्वाचीन सिद्ध योगियों ने चिर–काल–पर्यन्त भारत में सर्वत्र विचरण कर योग और योगासनों का प्रचार और प्रसार किया। तथा कोटि–कोटि जनता को रोगों से विमुक्त कर अभिनव, स्वस्थ जीवन प्रदान किया। भारत इन योगियों का सर्वदा अत्यन्त आभारी रहेगा। शरीर इन्द्रियाँ प्राण मन और बुद्धि इस सब समुदाय के स्वस्थ रहने को पूर्ण–स्वास्थ्य कहते हैं योगासनों के द्वारा ये सब पूर्ण स्वस्थ रहते हैं। यह योगशास्त्र का निश्चित सत्य–सिद्धान्त हैं जबकि वर्तमान समय में भारतीय जनता अधिकांश में अनेकानेक प्राचीन तथा नवीन रोगों से आक्रान्त रहती है। रोगों का परिल्पव सा आया हुआ है। बार–बार अपार धन राशि व्यय करने और रोग विघातनी अगणित योजनाओं आयोजनाओं के अत्यन्त प्रयोग करने पर भी पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो रही है। ऐसी अवस्था में स्वल्प आयास और स्वल्प धन व्यय से निष्पन्न स्वेच्छित आशुफल प्रद योगासनों के प्रचार और प्रसार की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे भारतीय जनता अत्यन्त तेजस्वी बल शालिनी और स्वास्थ्य सम्पन्न हो सकती है। योगासन जनता के लिए परम कल्याणकारी है। रोग दो प्रकार के होते हैं। एक स्वाभाविक दूसरे आनुसङ्गिक। स्वाभाविक रोग प्रायः द्वन्द्वों से उत्पन्न होते हैं। यथा हर्ष–शोक क्षुध–पिपासा सुख–दुःख मानपमान, काम क्रोध लोभ–मोह, जन्म–मृत्यु जरा आधि–व्याधि इत्यादि। आनुसङ्गिक रोग वे हैं जो वात पित्त कफ के न्यूनाधिक अनुसङ्ग से उत्पन्न होते हैं यथा क्लीवता अग्नि मान्द्य, मधु–महादि अर्दित अर्धाङ्ग इत्यादि। योगासनों के अभ्यास से द्वन्द्वों पर पूर्ण विजय प्राप्त हो जाती है द्वन्द्वज रोग अभ्यासी के पूर्ण वश में हो जाते हैं। वे कभ्यासी को कभी किसी भी अवस्था में विवश या व्यथित नहीं कर सकते यह निश्चित सिद्धान्त है। आनुसङ्गिक रोगों का योगासनों के द्वारा सर्वथा समूलोन्मूलन हो जाता है। ततो द्वन्द्वानाभि घातः योग दर्शन साधन पाद सूत्र। आसन सिद्धि से अभ्यासी के शरीर पर द्वन्द्वों का अनभिघात (असम्वेदन) रहता है अर्थात् द्वन्द्वों का प्रभाव अभ्यासी के शरीर पर नहीं पड़ता वह हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाता है। योगासनों के महत्त्व को दर्शाते हुए योग शास्त्रों में कहा है श्रसमेन रुजो हानी अर्थात् आसनों के अभ्यास से सर्व प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। फिर शरीर अत्यन्त बलवान और पूर्ण स्वस्थ हो जाता है किसी भी परिस्थिति में कभी व्यथित नहीं होता। योग दर्शन साधन पाद सूत्र में महर्षि पतंजलि ने बताया है कि स्थिरम् सुख मासनम् = अर्थात् आसनों के = जिसके द्वारा स्थिरता और सुख प्राप्त होता है। अथवा आसन सिद्धि से स्थिर सुख प्राप्त होता है। अर्थात् शरीर इन्द्रियाँ प्राण मन और बुद्धि स्थिर सुख का अनुभव करते हैं। अभिप्राय यह है कि आसनों से साध्यासाध्य सब रोग नष्ट हो कर स्थिर सुख प्राप्त होता है। भ्रांत मनुष्यों ने योगासनों के विषय में जनता में भ्रम फैलाया हुआ है कि योगासनों द्वारा

प्रत्येक मनुष्य पूर्ण लाभ उठा सकता है। श्री गोरखनाथ ने साक्षी होते हुए कहा है। गोरक्ष संहिता।

युवा वृद्धो वा व्याधितीव्याधितोऽपिवा।
अवश्य सिद्धमाप्नोति सर्व योगेपवतान्द्रित:।।

अर्थात् युवा वृद्ध अत्यन्त वृद्ध व्याधि ग्रस्त या व्याधि रहित ये सब प्रकार के मनुष्य अनालस्य होकर सब योगों में निरन्तर अभ्यास करने से अवश्य सफलता प्राप्त करते हैं। फिर आलसी अकर्मण्य मनुष्य कहते हैं कि योग का फल कहीं बारह वर्ष में प्राप्त होता है गोरक्ष संहिता में लिखा है–

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योग परायण:।
अब्दादूर्ध भवेत सिद्ध: कार्यानाम विचारण।।

ब्रह्मचर्य से रहने वाला और मिताहार करने वाला, त्यागी और योग परायण मनुष्य साधक एक वर्ष के पश्चात् अवश्य सिद्ध हो जाता है। इस विषय में कोई संदेह नहीं है। यद्यपि योग का प्रत्येक आसन अभ्यासी के शरीर के किसी न किसी अवयव पर अवश्य उत्तम प्रभाव डालता है किन्तु अनेक आसन और मुद्राएँ ऐसी हैं कि जो अभ्यासी के समस्त शरीर का कल्प करके उसको पूर्ण आरोग्य, अत्यन्त सुदृढ़ बलवान, और अभिनव बना देती है। जैसे–आसन–पश्चिमोत्तान उर्ध्व सर्वाङ्ग, शीर्षासन इत्यादि। मुद्रा = महा मुद्रा महा बन्ध–महाबेध आदि आसन ही विशेष–फलप्रद होने से मुद्रा कहे जाते हैं। आसनों से मुद्राओं का विशेष महत्त्व है। मुद्रा आसनों से विशेष फलप्रद है। क्योंकि इसके साथ प्राणायाम उड्डियान जालन्धर और मूलबन्ध भी किया जाता है। मुद्राओं में महामुद्रा विशेष उपयोगी होने के कारण इस लेख से मैं उसी का अभ्यास साधकों को सिखाता हूँ। मुद्रा का अर्थ होता है–मुद = प्रीति आत्मानन्द रासि ददाति या सा मुद्रा और महान् आत्मानन्द और शरीर मन इन्द्रिय बुद्धि प्राण के पूर्ण स्वास्थ्य रूपी आनन्द का प्रदान करती है उसको महा मुद्रा कहते हैं। महा मुद्रा कुण्डलिनी जाग्रति करा कर समाधि–सिद्धि करा देती है। और साधक को सिद्ध बना देती है। इस लिये योग शास्त्र में महामुद्रा का महान् महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। एक महामुद्रा साध लेने से सब योग सिद्ध हो जाता है। महामुद्रा के साथ महावेध भी अवश्य करना चाहिए महामुद्रा और महाबेध के साथ करने से कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत होती हैं। कुण्डलिनी जागरण के पश्चात् साधक कृत कृत्य हो जाता है। परम प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

महामुद्रा का स्वरूप–कम्बल बिछाकर समतल भूमि पर बैठ कर दोनों पैर सामने की ओर फैला दो। पुन: बाम पाद मोड़ कर उसकी एड़ी को गुदा और लिङ्ग के मध्य में जो रिक्त स्थान है उसमें दृढ़ता से लगा दो। पाद तल दाहिनी जंघा में चिपका दो फिर सोलह बार सूर्य चन्द्र क्रम से नाशा पुट से भस्रिका करो और दक्षिण नासा छिद्र से चार ओम जप का पूरा पूरक कर लो। सिर को घुटने पर लगाओ। फैले पैर को भूमि पर चिपका रहने दो। पेट को पीठ में लगाओ। प्राण वायु को अनाहत चक्र या जठराग्नि या मणिपूरक चक्र में रखो। नीचे से मूल बन्ध के द्वारा अपान वायु उठाकर प्राण वायु में मिलाओ। ठोढ़ी को कण्ठ कूप में लगाओ। सोलह ओम् जाप तक शिर घुटने में लगा रहने दो। फिर सीधे बैठकर बन्ध खोलो वायु का शनै: आठ ओम जप तक पूर्ण रेचन कर दो। पुन: उसी प्रकार वाम अङ्ग से करो वाम दक्षिण के क्रम से प्रथम पांच और फिर यथेष्ठ शनै: शनै: बलानुसार बढ़ाकर सौ तक ले जाओ। कुम्भ के आदि भी उसी

क्रम से बढ़ाया जा सकता है। सौ मुद्राएँ करने से फल प्राप्त होने लग जायेगा। दोनों अङ्गों से समान मुद्रा करना चाहिये जब संख्या हो तब मुद्रा बन्द करना चाहिए। दिन में चार बार महा मुद्रा का अभ्यास करना विहित है। महावेध पदमासन जमा कर बैठ जाओ कटि और सिर मेरुदण्ड सीधा रखो।

दोनों हाथों की हथेली अँगुलियाँ दृढ़ता से मिला कर सिकोड़ लो। मुट्ठी सी बँध जायें। इसको करने से प्रथम भस्त्रिका प्राणायाम कर लो मूल उड्डियान और जालन्धर बन्ध लगा लो बँधी हुई दोनों हाथ की सम्मिलित मुट्ठियों को भूमि पर लगाओ और स्फिच भाग सहित सब आसन पृथ्वी से उठाकर फिर भूमि पर फिर जोर से मारो अपान प्राण बन्धों के द्वारा मिला रहे।

इस भाँति एक बार में तीन बार या इससे अधिक बार भूमि पर स्फिच का आघात देकर जिस ओर से पूरक किया हो उसके दूसरी ओर वायु का रेचन करो। क्रम चार, सोलह और आठ हो इस प्रकार बलानुसार सौ तक कर सकते हो।

जैसे दण्डा घात से सर्पिणी सीधी होकर फण उठाकर सीधी खड़ी हो जाती है। उसी प्रकार महावेध के अभ्यास से कुण्डलिनी सीधी होकर पश्चिम मार्ग से ब्रह्म रन्ध्र में चढ़ जाती है। साथ में प्राण वायु भी उसी मार्ग से ब्रह्म रन्ध्र में चढ़ जाता है और यथेष्ठ समय तक निरुद्ध रहता है। योग शास्त्र प्रदर्शित महा मुद्रा का फल गोरक्ष पद्धति श्लोक ६० से ६३ तक

नहि पथ्यमपथ्यं वा रसा: सर्वेऽपिनीरसा:।
अपिभुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते।६०
क्षय कुष्ठ मुदावर्त गुल्मा जीर्ण पुरो गमा:।
रोमादतस्य क्षयं यान्त महामुद्राञ्च योभ्यसेन।।६१
कथतेयं महा मुद्रा महा सिद्धि करी नृणाम्।
गोपनीया प्रयानेन न देया यस्य कस्य चित्।।६३।।

महामुद्रा के अभ्यासी के लिये पथ्य अपथ्य का पालन नहीं करना पड़ता। कटु अम्ल शिक्षा आदि सब रस उसके अनाययास पच जाते हैं। यहाँ तक कि भयंकर विष खा लेने पर भी वह अमृत की भाँति पच जाता है। महा मुद्रा के अभ्यासी की जठराग्नि इतनी अधिक सन्दीप्त हो जाती है कि उसके लिये पथ्य अपथ्य का बन्धन नहीं रह जाता। वह यथेष्ठ और सब कुछ खाकर अनायास पचा लेता है। उसकी जठराग्नि के सब रोग जल जाते हैं और वह पूर्ण आरोग्य अत्यन्त शक्तिशाली और स्वेच्छित सर्वकार्य करने में पूर्ण समर्थ हो जाता है। योग के सब ग्रन्थों में इसका अति प्रकार फल लिखा है। इसका फल ऋषियों के अनुभव अक्षरस: सत्य विदित हुआ है महा मुद्रा से संसार का महान् उपकार किया जा सकता है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योग की महिमा

डॉ. ऋषिराम शर्मा

योग की महिमा का यथार्थ ज्ञान तो सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ भूमिका अस्मितानुगत समाधि में स्वतः प्राप्त केवल यथार्थ ग्रहण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ही करा सकती है। तथापि मैं ऋतम्भरा प्रज्ञागर्भित आप्त वाक्यों का अवलम्ब लेकर जिज्ञासुओं के समक्ष परम श्रेयात्मक योग की महिमा का गुणगान करना चाहता हूँ। इस लेख से मेरा एक उद्देश्य है कि जैसे किसी अत्यन्त कष्टदायी पीड़ा से पीड़ित रोगी को उसके कष्ट से मुक्ति दिलाने वाली औषधि को पा जाने की बेचैनी रहती है और वह तब तक निरन्तर डॉक्टरों के पास दौड़ता रहता है जब तक कि उसे किसी औषधि पर विश्वास नहीं जम जाता है। ठीक वैसे ही मैं भी अत्यन्त कष्टदायी भवताप से पीड़ित अपने लिए और अपने भाई और बहनों के लिए किसी विश्वसनीय औषधि की आवश्यकता का अनुभव कर रहा हूँ जिसके पान से भवताप से मुक्ति मिल जाये। गरुण पुराण में तदर्थ औषधि का उल्लेख किया है कि—

''भवतापेन हि तप्तानां योगो हि परमौषधम्''

अर्थात् भवताप से तप्त जीवों के लिए योग ही परम औषधि है। बस मैं इस औषधि पर अपना और आप सब का विश्वास जमाने के उद्देश्य से कुछ लिखना चाहता हूँ।

संसार का प्रत्येक प्राणी जन्ममरणजराव्याधि-जनित यातनाओं और अनेकानेक मानसिक यातनाओं से असह्य दुःख भोग रहा है। वह दिनरात इन यातनाओं से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता रहता है किन्तु उलझता ही जाता है। महर्षि वशिष्ठ जी ने सांसारिक जीवों के कल्याण हेतु भगवान राम को निमित्त बनाकर उपदेश किया कि—

दुःसहा राम संसार विषवेगविषूचिका

योगगारुड़मन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति।।

अर्थात् हे राम! भवताप रूपी विषविषूचिका का वेग दुःसह है। यह केवल पवित्र योग रूपी गरुणमन्त्र के उपचार से शान्त होती है।

सांसारिक दुःख तीन प्रकार के होते हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। योगहीन अशक्त जीव अपने विशुद्ध आनन्दमय स्वरूप को न पहचान कर ''मैं देह हूँ'' इस भाव में बँधकर दुःख होता है। कफ, पित्त और वात आदि के विकार से उत्पन्न शारीरिक पीड़ा से होने वाले दुःखी और काम क्रोधादि से जनित मानसिक यातनाओं को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। अति शीत, अति उष्ण, अति वात, अति वृष्टि और विद्युत्पात आदि दैवी शक्तियों से जन्य दुःख को आधिदैविक कहते हैं। सिंह, वृश्चिक तथा सर्पादि प्राणियों से जन्य दुःख आधिभौतिक कहलाते हैं। वस्तुतः यह संसार एक भयंकर कंटकाकीर्ण अरण्य के समान है

जिसमें भटकता हुआ जिज्ञासु जीव मुक्तिपथ की खोज में चिन्तातुर है। उस पुण्यवान जिज्ञासु के लिए पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया है कि–

''जननाशजरोग्रवनेचरम्

त्रिविधतापकुकंटकसंकुलम्

उपरमेत तृषोग्रदवानलम्

जगदरण्यमेक्ष्य सुधीरधीः।।''

अर्थात् जैसे भयंकर जंगल में शक्तिहीन जन्तुओं को शक्तिशाली सिंहादि हिंसक पशु खा जाते हैं वैसे ही शक्तिहीन जीवों को इस जगदरण्य में जन्म, मृत्यु और जरा ही भक्षण कर जाती है, क्योंकि ''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'' जैसे ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए पुरुष को शरीर के अवयवों में चुभने वाले तीक्ष्ण काँटे विदीर्ण कर देते हैं वैसे ही इस संसार रूपी जंगल के योगाभ्यास रूपी ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए जीव को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आदिभौतिक ताप रूपी कंटक विदीर्ण कर देते हैं। जैसे जंगल में बाँसों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न दावानल जंगल के वृक्षों और जंगली जन्तुओं को जला डालती है वैसे ही इस संसार रूपी जंगल में विषय–वासनाओं और इन्द्रियों के संघर्षण से उत्पन्न तृष्णा रूपी दावानल सांसारिक प्राणियों को जला डालती है। अतएव इस प्रकार के दुःखदायी संसार रूपी जंगल को विवेक दृष्टि से देखकर मुमुक्षु पुरुष को योग–साधन रूपी ऋजुमार्ग प्राप्त करने के लिए वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि

''इहामुत्र विरक्तस्य संसारस्य प्रजिहासतः

जिज्ञासैरेव कस्यापि योगेस्मिनधिकारिता।।''

अर्थात् इस लोक और परलोक के विषय भोगों से विरक्त और इस दुखदायी संसार से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु पुरुष का ही परमश्रेयात्मक योग में अधिकार है।

अब शंका होती है कि योग से हमारे दुःखों का अन्त कैसे होगा तथा योगाभ्यास से हमें क्या प्राप्ति होगी ?इस शंका का निवारण जगदात्मा भगवान कृष्ण अपने मुखारविन्द से करते हैं कि–

''सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्

सः निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा।।''

अर्थात् उसको तुम योग के नाम से जानो जिसमें सर्व दुःखों का अभाव हो जाता है, जिसमें स्थित हुआ पुरुष अवर्णनीय अपार सुख को पाकर फिर कभी अपनी आनन्दमय

स्वरूपस्थिति से विचलित नहीं होता, जिसमें स्थित हुआ पुरुष महान् सांसारिक दुःखों से भी विचलित नहीं होता है, क्योंकि उसे वह अद्भुत लाभ मिल जाता है जिससे अधिक फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता है। ऐसे परमश्रेयात्मक योग का निश्चयात्मक एवं निर्द्वन्द्वचित्त से अभ्यास करना चाहिए।

अब शंका होती है कि योग की शरण में आने पर ही भव–बन्धन से मुक्ति मिल जाती है तो श्रुतियों से विरोध हो जायेगा, क्योंकि श्वेताश्वतर उपनिषद् में प्रतिपादित है कि

''तमेव विदित्वातिमृत्युमति नान्यः

पंथा विद्यतेऽयनाय।''

अर्थात् ब्रह्मज्ञान से ही जन्ममरण रूप भवबन्धन से मुक्ति मिलती है। मोक्ष–प्राप्ति का इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है।

स्मृतियों में भी लेख मिलता है कि–

''ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते''

अर्थात् ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे जीव भव–बन्धन से छूट जाता है।

भगवान् शंकराचार्य जी ने भी इसी की पुष्टि की है कि

''नान्योस्ति पंथा भगवन्धमुक्तेर्विना

स्वतत्वावगमं मुमुक्षोः''

अर्थात् मुमुक्षु के लिए तत्वज्ञान के अतिरिक्त भव–बन्धन से मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

भगवान कृष्ण ने भी अपने मुखारविन्द से इसे अंगीकार किया है कि

''सर्व कर्मांखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते''

अर्थात् ज्ञान को पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है। किन्तु इसमें एक विशेष रहस्य और भी है कि

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति।।

अर्थात् निःसन्देह ज्ञान के समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है किन्तु इस ज्ञान का योग–सिद्धि होने पर ही आत्मा में स्वयं प्रादुर्भाव होता है।

वस्तुतः माया के आवरण का क्षय हो जाना ही ज्ञान है, किन्तु बिना योग–सिद्धि के माया का अविद्याजनित आवरण क्षय होता नहीं है। एक बार लोक–कल्याणार्थ भगवती पार्वतीजी ने भगवान सदाशिव जी से भी यही शंका की थी कि

ज्ञानदेय हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनः सदा।

न कथं सिद्धयोगेन योगो किं मोक्षदो भवेत्।।

अर्थात् जब ज्ञानियों का कथन है कि केवल ज्ञान से मोक्ष मिलती है, अन्य साधन से नहीं तो फिर सिद्धयोग से क्या प्रयोजन है और योग मोक्षदाता कैसे माना जाय।

इस शंका का समाधान स्वयं भगवान सदाशिव जी करते हैं कि

ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा

सर्वे वदन्ति खगेन जयो भवति तर्हि किम्

बिना युद्धेन वीर्येण कथं जयमाप्नुयात्

तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय न भवेत्

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः

बिना योगेन देवौऽपि न मोक्षं लभते प्रिये।।

अर्थात् यह तो सत्य है कि ज्ञान से ही मोक्ष मिलती है। सभी मुख से कहते हैं कि खड्ग से युद्ध में विजय मिलती है किन्तु क्या कभी युद्ध और वीर पुरुष के बिना विजयश्री मिल सकती है अर्थात् नहीं। इसी प्रकार योग से रहित ज्ञान मोक्ष का दाता नहीं हो सकता। कोई चाहें कितना भी श्रोत्रिय ब्रह्मज्ञानी हो, धर्म का ज्ञाता हो, विरक्त हो, विजितेन्द्रिय हो अथवा चाहें देवता हो, वह भी योग के बिना मोक्ष नहीं पा सकता।

जब तक योग साधनों द्वारा चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध नहीं हो जाता तब तक परास्वरूपस्थिति नहीं प्राप्त होती। जैसे औषधि का बिना पान किये केवल नामोच्चारण से व्याधि दूर नहीं होती इसी प्रकार योग द्वारा अपरोक्ष अनुभूतियाँ किए बिना केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से मोक्ष नहीं मिलती। यदि ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष मिल जाती होती तो दैत्यों के पति विरोचन को तो स्वयं ब्रह्मा जी ने ब्रह्मज्ञान दिया था अतः उसकी मोक्ष हो जानी चाहिए थी किन्तु नहीं हुई। अतः यही निश्चय होता है कि

''नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता

परामर्षादिते विरोचनवत्''

अर्थात् विरोचन की तरह केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से कृतकृत्यता नहीं मिलती।

श्रुतियों ने भी यही निष्कर्ष निकाला कि—

''अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।''

अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार का उपाय योग है। अध्यात्मयोग की सिद्धि से ही धीर पुरुष अपने स्वरूप को जानकर हर्षशोक से मुक्त हो जाता है।

स्कन्ध पुराण में योग की श्रेष्ठता का निरूपण इस प्रकार किया है कि

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि।

स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिद्ध्यति।।

अर्थात् आत्म ज्ञान से मोक्ष मिलती है किन्तु वह भी योग के बिना नहीं। वह मोक्ष का हेतु योग चिर काल के अभ्यास के अनन्तर ही सिद्ध होता है।

मोक्ष में योग की अपेक्षा का कारण यह है कि जीव जन्मजन्मान्तरों से अविद्या के आवरण में देह–बुद्धि से ही व्यवहार करता आया है। योगाभ्यास के बिना वह देह से अलग होकर

अपनी चिद्रूपता का अनुभव कर नहीं सकता। वेदान्त के महावाक्यों आदि से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है वह भी वृत्तिजन्य ज्ञान रहता है क्योंकि जब तक योगाभ्यास द्वारा निरोध समाधि की प्राप्ति नहीं होती तब तक जीव को वृत्तिसारूप्यता से ही अनुभव होते हैं। योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ जी ने भगवान राम को इसका रहस्य समझाया है कि

जन्मान्तरचिराभ्यस्ता राम संसारसंस्थिति।

सा च चिराभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित्।।

अर्थात् हे राम! जीव में संसार–भावना जन्म–जन्मान्तरों से चली आ रही है अतएव दृढ़ हो गई है। वह चिरकाल तक योगाभ्यास किए बिना कभी क्षीण नहीं होती है।

यहाँ एक शंका होती है कि यदि योगाभ्यास के बिना अपरोक्ष ज्ञान की अनुभूति तथा कैवल्यमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो पुराणों में राजा जनक, एवं ब्राह्मणों और तुलाधार वैश्य आदि को बिना योगाभ्यास मोक्ष कैसे मिल गया। भगवान पतंजलि ने अपने योग दर्शन में योग–सिद्धि के दो मार्ग बताये हैं। एक तो ''भवप्रत्ययः विदेहप्रकृतिलयानाम्'' अर्थात् जिनकी पूर्वजन्मों में किए गये योगाभ्यास से तत्वलीनता हो चुकी है उनको जन्म लेने पर स्वतः योगसिद्धि हो जाती है। दूसरों के लिए ''श्रद्धावीर्यस्मृतिप्रज्ञ पूर्वकमितरेषाम्'' अर्थात् श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, ध्यान और समाधि के अभ्यास से योग–सिद्धि होती है। सो राजा जनक आदि को पूर्वजन्मकृत अनुष्ठानों और योगाभ्यास के फलस्वरूप उपरोक्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह बात पुराणों में भी प्रतिपादित है कि

जैगीषव्यो यथा विप्रो यथा चैवासितादयः।

क्षत्रियाजनकाद्यास्तु तुलाधारादयो विशः

ऐते चान्ये च बहवो नीचयोनिगता अपि

ज्ञाननिष्ठां परां प्राप्ताः पूर्वाभ्यस्तस्वयोगतः।।

अर्थात् जैगीसव्य तथा असित इत्यादिक ब्राह्मण, जनकादि क्षत्रिय और तुलाधारादिक वैश्य तथा अन्य भी अनेक नीच योनि को प्राप्त हुए जीवों ने अपने पूर्वजन्मकृत योगाभ्यास के फलस्वरूप ही अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति की।

अतएव मुमुक्षु को योग–साधना में लगना ही श्रेयस्कर है क्योंकि

''ज्ञानं वदन्तीह विमोक्षकारणं

तज्जायते नैव दिलोलचेतसि

लौल्यं न योगेन विना प्रशाम्यति

तस्मातदर्थं हि मतेत् साधकः।''

अर्थात् ज्ञान मोक्ष का हेतु तो है किन्तु मोक्षदाता ज्ञान की चंचल चित्त में उत्पत्ति ही सम्भव नहीं है क्योंकि चित्त की चंचलता योगाभ्यास के बिना नहीं शान्त होती। अतः मुमुक्षु को योग का ही साधक बनना चाहिए।

जगदात्मा भगवान कृष्ण ने भी गीता में योग सर्वश्रेष्ठता को अंगीकार किया है कि

''जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्म तिवर्तते'' ''सन्यासस्तु महाबाहो दु:खमाप्तुमयोगत:'' ''तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:'' ''योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्'' इत्यादि। योगाभ्यासी को जो गति प्राप्त होती है वह घोर तपस्या करने से, तीव्र स्वाध्याय करने से तथा बड़े–बड़े यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होती। अत्रिसंहिता में इसकी पुष्टि की है कि

न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्जयया।

गतिं गन्तुं द्विजन: शक्ता: योगात्सम्प्राप्नुवान्ति याम्।

योग क्या है और योगाभ्यास कैसे किया जाय यह तो सत्गुरुदेव भगवान की शरणागति में ही समझ में आता है। बिना गुरुकृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। इस लेख का विषय तो यही है कि कल्याण के मार्गों में योग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। अतएव सर्वभाव से मनोवांछित फल देने वाले योग रूपी कल्पवृक्ष की आराधना करनी चाहिए। अब हम योग रूपी कल्पवृक्ष का वर्णन करते हैं कि

हृद्‌भूवो निगमबोधसुमूलको द्वि-

स्कन्ध: शङ्कुन्ततलतुश्च यमादिपर्ण:

ध्यानादिपुष्पललितश्च विमोक्षसस्य:

सर्वार्थदो जयति योगसुरद्रुमोऽयम्।।

अर्थात् योग मनोवांछित फल देने वाला कल्पवृक्ष है क्योंकि अन्य सभी परमात्मा की ओर ले जाने वाले साधन रूपी वृक्षों की अपेक्षा यह श्रेष्ठतर है। हृदय रूपी भूमि में इस की उत्पत्ति होती है भगवान पतंजलि ने कहा है कि चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने पर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। जैसे वृक्ष के विस्तार की हेतु उसकी जड़ें होती हैं वैसे ही इस योग रूपी कल्पवृक्ष का विस्तार ब्रह्मबिन्दु उपनिषद्, अमृत बिन्दु उपनिषद, ध्यानबिन्दु उपनिषद, योगतत्व, योगशिखादि उपनिषदों से, गीतका, रामायण, योगदर्शन आदि शास्त्रों से तथा गुरु वाक्यों से होता है। जैसे वृक्ष के फल–फूल और पत्तियों को सम्हालने के स्कन्ध होते हैं वैसे ही योग रूपी कल्पवृक्ष के अभ्यास और वैराग्य रूपी दो स्कन्ध हैं। याज्ञवल्क्य संहिता में योग की प्रसिद्धि के लिए षड् साधन बताये हैं कि

उत्साहसात्धैर्यात् तत्वज्ञानाच्चानिश्चयात्।

जनसंगपरित्यागात् षड्भिर्योग: प्रसिद्धयति।।

अर्थात् उत्साह, साहस, धैर्य, तत्वधान, निश्चय तथा जनसंसर्ग से योग की प्रसिद्धि होती है। यह षडंग ही योग रूपी कल्पवृक्ष की लतायें हैं। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारादि वहिरंग साधन इसके पत्ते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि रूप योग के अन्तरंग साधन योग रूपी कल्पवृक्ष के पुष्प हैं और असम्प्रज्ञात समाधि से उत्पन्न मोक्ष रूपी फल लगता है।

बस ऐसे योग रूपी कल्पवृक्ष को पाने के लिए जो श्रद्धालु जिज्ञासु प्रयत्न करेंगे उनकी योगयोगीश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु जी सब प्रकार से सहायता करेंगे।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

प्रभु-भक्ति का वैदिक स्वरूप

– श्री राम शर्मा आचार्य

आत्मिक–शान्ति और पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिये ही यह जीवन मानवदेह में अवतरित हुआ है। यही इसके जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिये ही यह जीव सुख और शान्ति का खोजी बनकर उसकी प्राप्ति के लिये दर–दर भटकता और ठोकरें खाता फिरता है। इसके जीवन का सारा क्रिया–कलाप, सारी उधेड़बुन केवल जीवन को शान्त और सुखमय बनाने के लिये ही है। किन्तु, इस जीवन–संग्राम में इतनी खटपट और उधेड़बुन करने पर भी जीव उस सच्चे सुख और शांति से वंचित ही रहता है जिसकी कि उसे अभिलाषा है। इतना ही नहीं, प्रत्युत कभी–कभी तो वह जीवन में सुख और शान्ति के स्थान पर अत्यन्त क्लेश, दु:ख और अशान्ति का ही अनुभव करता है। संसार के नाना प्रकार के सुखप्रद विषयों और वैभवों का भोग करता हुआ भी वह उसमें उस शान्ति और आनन्द का अनुभव नहीं करता, जिसकी उसे चिर अभिलाषा है। ऐसा क्यों ? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि जिन भौतिक पदार्थों में परमानन्द और परम शान्ति का अभिलाषी बन भटक रहा है, वे पदार्थ स्वयं सुख और शान्ति से रहित हैं। कोसों दूर हैं। भला जिस के पास जो वस्तु है ही नहीं वे दूसरे को क्या दे सकेगा? जो स्वयं भूख व प्यास से तड़प रहा है, वह हमें कैसे स्वादिष्ट भोजन तथा मधुर जल का पान करा सकेगा और हमारी भूख और प्यास शान्त कर सकेगा ? इसीलिये आत्मा जब इन भौतिक पदार्थों में भटक कर निराश हो जाती है, उसे अपनी अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। इतना ही नहीं प्रत्युत वह विश्व के विविध विषय–भोग और अमोद–प्रमोद, सुख और शान्ति के स्थान पर उल्टा उसके दु:ख और अशान्ति का कारण बन जाते हैं। तो वह निराश हो जाता है। उसकी आत्मा संतप्त और व्याकुल हो उठती है, उसे चारों ओर विषय वासनाओं की जलती हुई प्रचण्ड ज्वालाएँ व्याकुल और अप्रसन्न बना देती हैं। उस समय उसे सुख और शान्ति के परमधाम प्रभु का ध्यान आता है और वह पश्चाताप करता हुआ वेद के शब्दों में प्रभु से पुकार उठता है।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीमि पर्शवः ।

ऋगवेद 1/105//8।।

हे दीनबन्धु ! हे अधर्मोद्धारक पतित पावन प्रभो, अब तो मुझे ये तृष्णाएँ ये विश्व की क्षणिक कामनाएँ और विषयों की विष भरी वासनाएँ संपत्तियों के समान सन्तप्त और व्याकुल कर रही हैं। भगवन् ! अब मैं सब ओर से निराश होकर और तेरा भक्त बनकर तेरे द्वार पर आया हूँ। हे दीनबन्धो ! क्या इस दीन की पुकार न सुनोगे ? क्या अपने इस भक्त को विश्व की क्षणिक वासनाओं और तृष्णाओं से हटाकर अपनी प्रेममयी पावन गोद में नहीं लोगे ? उस समय ऋषि दयानन्द के शब्दों में प्रभु उस अति व्याकुल भक्त की करुण पुकार को सुनते हैं और उसे

अपनी सर्व–शक्तिमयी गोद में लेते हैं।

वास्तव में योगीजनों के शब्दों में हर अविद्या आदि पञ्चक्लेशों से संतप्त और परिणाम, ताप, संस्कार आदि दु:खी से दु:खी जीव के लिये एकमात्र वह सच्चिदानन्द प्रभु ही सच्ची शान्ति और परम सुख का सहारा है। इसीलिये वेद कहता है –

न त्वदृते अमृदा मदयन्ते।

हे आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द प्रभो ! तेरे शरणागति के बिना तेरा यह अमृत पुत्र पूर्णानन्द को प्राप्त नहीं कर सकता।

वास्तव में जो मनुष्य अपने जीवन को कदाचारों और कुत्सित संस्कारों से हटाकर उस प्रभु की शरण में आ जाता है, दूसरे शब्दों में वह अपनी अधमावस्था पर पश्चात्ताप करता हुआ उसका परित्याग कर सत्पुरुष अर्थात सन्मार्गगामी बन जाता है, भगवान अवश्य उसके ऊपर सब प्रकार के सुखों की वर्षा करते हैं। इसीलिये वेद कहता है –

"त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि।"

ऋग्वेद 2/1/3।।

हे परमज्योतिर्मय प्रभो ! तुम ही तो सत्पुरुषों के लिये, अपने अनन्य भक्तों के लिये इन्द्र और वृषभ बनकर उसके ऊपर समग्र ऐश्वर्यों और सकल सुखों की वर्षा करने वाले हो।

"मा ते भयं जरितारम्"।

ऋ.1/188/4।।

तेरे प्रेमी भक्त को भय, चिन्ता और दु:ख कहाँ? वेद के उपर्युक्त वचनों से सिद्ध होता है कि एकमात्र प्रभु भक्ति ही इस भव–बन्धन में पड़े जीव को सुख, शान्ति और परमानन्द प्रदान करने वाली है।

बिना ईश्वर आराधना के आत्मा को परमशान्ति और परमानन्द की उपलब्धि होना बहुत कठिन ही नहीं, अपितु नितान्त असम्भव है।

अब उस प्रभु भक्ति का क्या स्वरूप है, थोड़ा इस पर विचार करना चाहिए। भक्ति में तीन बातों का ज्ञान लेना परमावश्यक है, हम किस की भक्ति करें, कैसे बनकर करें और क्या करें ? बिना इन तीनों बातों के जाने जो जन भक्ति मार्ग पर चलने लगते हैं, वे सदा अपने चरम लक्ष्य से वंचित ही रहते हैं, उन्हें निज अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। अत: भक्ति मार्ग के पथिक को उपर्युक्त तीनों बातों का जान लेना परमावश्यक है।

भक्ति का पहला कर्त्तव्य है कि वह यह विचार करे कि जिसको वह अपना आराध्यदेव बनाने चलता है, जिस सुन्दर स्वरूप को वह अपने हृदय – मन्दिर में बैठाना चाहता है उसका क्या स्वरूप है ? उसकी उपासना करने पर मुझे अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति होगी या नहीं ? भक्त कैसे आराध्यदेव की आराधना करें ? इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में एक सुन्दर मंत्र आता है।

तमुष्टहि यो अन्तः सिन्धौः सूनुः ।

सत्यस्य युवानम द्रोधवाचं सुशेवम् ।।

अर्थववेद 6/1/2।।

वेद कहता है – हे भक्त ! यदि तू सच्ची शान्ति और परम आनन्द को प्राप्त करना चाहता है तो (तम्+उ+स्तुहि) उस ही प्रभु की उपासना कर। (यः+अन्तःसिन्धुः) जो इस संसार में रम रहा है। (सत्यस्य+सूनुः) जो सदा सत्य की ओर ही प्रेरणा करता है। (युवानम्) जो सर्वदा युवा अर्थात् एक रस रहता है (सुवेशम्) जो सारे बलों, सुखों और आनन्द का भण्डार है। (अद्रोघवाचम् जिसकी वाणी में किसी के प्रति असत्य, द्रोह और विश्वासघात नहीं है।

भक्त सोचता है मैं अपने प्रभु को कैसे मिलूँ। मेरा वह प्रियतम मुझे कहाँ मिलेगा और नाना प्रकार की तृष्णाओं और आसुरी वासनाओं रूपी तरंगों से तरंगित काम, क्रोध, राग, मोह ईर्ष्या आदि जल–जन्तुओं से पूर्ण इस भवसागर में मेरा कौन सहारा है ? इन दोनों आशंकाओं का समाधान वेद एक ही शब्द में करता है (तमु+स्तुहि+यो+अन्तःसिन्धु) भक्त तू उस प्रेम की स्तुति कर जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। उस आराध्यदेव की आराधना करने के लिये तुझे अन्यत्र कहीं भटकना नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह तेरा अन्तर्यामी तो तेरे रोम–रोम में रम रहा है। फिर तुझे इधर–उधर जाने और भटकने की क्या आवश्यकता और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि यह संसार एक अथाह सागर है और यह जीव अपनी दुर्वासनाओं और निर्बलताओं के वशीभूत होकर अहर्निश इसमें गोते खा रहा है। परन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि जो भक्त उस करुणामय प्रभु का आश्रय ले लेता है, उसकी प्रेममयी गोद में बैठ जाता है और उसकी शरण में आ जाता है, वह अवश्य भव–सिन्धु से तैर कर पार हो जाता है।

प्रभु प्राप्ति का लक्ष्य केवल जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से छुटकारा पाना ही नहीं, प्रत्युत उससे छूटकर उस परमानन्द और परम शान्ति को प्राप्त करना है, जिसकी खोज में जीव जन्म–जन्मान्तरों से भटक रहा है। अतः भक्त सोच सकता है कि प्रभु की उपासना से मैं जन्म–मरण के बन्धन से तो छूट ही जाऊँगा, किन्तु मेरा अन्तिम लक्ष्य तो परमानन्द की प्राप्ति है। क्या प्रभु–भक्ति द्वारा इसकी भी मुझे प्राप्ति होगी या नहीं ? वेद–भक्त के इस संदेह को भी दूर करता है, हे प्रिय भक्त ! तू इस सन्देह को भी अपने हृदय पटल से दूर कर दे, क्योंकि तेरे आराध्यदेव भगवान् तो ' सुशेवः ' हैं। सारे सुखों के भंडार हैं। परम शान्ति और पूर्णानन्द के धाम हैं। फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उस शान्ति और आनन्द के परम निकेतन को प्राप्त कर लेने पर तू आनन्द से वंचित रह जाय। सच्चा ईश्वरभक्त उस परम कल्याणमय प्रभु की उपासना द्वारा उसमें तल्लीन हो जाता है और इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने को भूलकर वेद के शब्दों में स्वयं कह उठता है :–

(क्रमशः)

समय की ज्वलंत आवश्यकता

"हममें से कुछ लोग इस सांसारिक प्रपंच से अलग रहें और केवल परमात्मा के लिये जीवित रहें। संसार के लिये धर्म की रक्षा करें। यदि वैराग्य धारण करो तो दृढ़तापूर्वक डटे रहो। यदि इस युद्ध में सैकड़ों गिर जायें तो भी पताका को थामे रहो और बढ़ते जाओ। चिंता नहीं कौन गिरता है ? सत्य संकल्प के पीछे भगवान स्वयं विद्यमान हैं। जो गिरे वह पताका को दूसरे हाथों में सौंप दे और तब वह कभी नहीं गिर सकेगी। जीवन की क्षुद्र मर्यादाओं में बंधे ये बेचारे गृहस्थ कर ही कितना सकते हैं? यह सन्यासियों का कार्य है, शिव के गणों का कार्य है कि आकाश को 'हर! हर!' के निनाद से गुंजायमान कर दें।

मेरी समस्त भावी आशा उन युवकों में केन्द्रित है– जो चरित्रवान हों, बुद्धिमान हों, लोकसेवा के हेतु सर्वस्व त्यागी और आज्ञापालक हों, जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिये और इस प्रकार अपने तथा देश के व्यापक कल्याण के हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें। यदि मुझे नचिकेता की श्रद्धा से सम्पन्न केवल दस या बारह युवक मिल जायें तो मैं इस देश के विचारों और कार्यों का एक नयी दिशा में मोड़ सकता हूँ।

जिनमें मुझे कुछ अधिक क्षमतायें दीख पड़ती हैं उनमें से कुछ विवाह के बंधन में फंस गये हैं। कुछ ने स्वयं को नाम प्रतिष्ठा या धन कमाने के लिए बेच डाला है और कुछ शरीर से दुर्बल हैं। शेष, जिनकी संख्या अधिक है, किसी उच्च भाव को ग्रहण करने में ही समर्थ नहीं है।

मैं चाहता हूँ– लौह पेशियाँ और इस्पात के स्नायु, जिनके भीतर उसी धातु का बना मानस रहता है, जिनका वज्र बनाया जाता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्रवीर्य, ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर होनहार युवकों के पास ये सब चीजें हैं–यदि केवल उन्हें उस क्रूरता की वेदी पर – जिसे वे विवाह करते हैं–बलि न किया जाय। हे भगवान मेरी पुकार सुनो– कुछ को इस विवाह से बचा रहने दो। उन्हें केवल ईश्वर के लिए जीने दो, ताकि वे दुनियाँ के लिए धर्म की रक्षा कर सकें। निस्सन्देह क्योंकि ईश्वरीय इच्छा से इन्हीं लड़कों में से कुछ समय बाद आध्यात्मिकता और कर्म–शक्ति के महान पुंज उदित होंगे जो भविष्य में मेरे विचारों को क्रियान्वित करेंगे।"

– स्वामी विवेकानन्द

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः स ह्यात्महा स्व विनिहन्त्यसद्ग्रहात्।।

यदि किसी प्रकार (पुण्य विशेष से) परम दुर्लभ मानव–जन्म पाकर उसमें भी सम्पूर्ण श्रुतियों का आद्योपरान्त अनुशीलन करने वाले पुरुष–शरीर को पा लेने पर भी जो मूढ़चित्त मानव अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह आत्म हत्यारा है। वह अनित्य भोगों में फँसे रहने के कारण अपने आपको विनाश के गर्त में गिरा रहा है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566: सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा